त्रैमासिक ● जुलाई-सितम्बर 2001 ● छह रुपए

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

एक हजार एक कारण हैं कि हम विद्रोह करें!

अमेरिकी शासकों के हाथ खुद अपनी जनता के खून से रंगे हैं

भगत सिंह की बात सुनो! नयी क्रान्ति की राह चुनो!

अगर तुम युवा हो!

जातिगत अपमान व उत्पीड़न के नाश के लिए ...

छात्र राजनीति: विकल्प की बेचैनी

कहानी: दान्को का जलता हुआ हृदय

भूखों का गुस्सा

लोग भूख से मर रहे हैं! आम की गुठलियों और
बीपीएल कार्डों के बारे में
तुम्हारे मक्कारी भरे झूठों के बावजूद
सच यही है – लोग भूख से मर रहे हैं।
वे भूख से मर रहे हैं
जबकि गोदामों में 6 करोड़ टन अनाज सड़ रहा है
वे मर रहे हैं – गुठलियां और छाल और पत्ते खाकर
और राजधानियों में फास्टफूड रेस्त्रां की
एक और मल्टीनेशनल चेन का उद्घाटन हो रहा है
वे अपने ग़रीब होने के "प्रमाण" गिरवी रख रहे हैं
लालची दुकानदारों के पास
और सरकारें ग़रीबों की तलाश के लिए
करोड़ों के बजट वाली योजनाएं बनाने में व्यस्त हैं
...
लेकिन भूलो मत
कि दावानल और बड़वानल से भी विकराल है
पेट की आग
आज इन भूखे लोगों ने
सिर्फ गुठलियां ही पटकी हैं मुख्यमंत्री की कार पर
कल उनकी नफरत की चिगारियां
दरिन्दों के इस पूरे निजाम पर गिरेंगी
कल उनके गुस्से की आग में
धू-धू कर जलेंगे तुम्हारे महल, तुम्हारे गोदाम,
तुम्हारा लूट का राज
तुम्हारा 'स्वराज', तुम्हारा रामराज!

चला अटलू का मंतर रोजगार हुआ छूमंतर...

गिलि-गिलि-गिलि-गिलि फू ...
जय बाबा अमरीका वाले
जय टाटा, जय बिड़ला, जय अम्बानी
ओम् वर्ल्ड बैंक, ओम् आईएमएफ, ओम् डब्लूटीओ
ओम् हिंग-क्लिंग... चिन्ता छोड़ो – सुख से जिओ!
ओम् मोंटेक सिंह अहलूवालिया
कर दे बेटा देश को दिवालिया!
ओम् छंटनी, ओम् तालाबंदी, आम 'डाउनसाइजिंग'
ओम् आईटी, ओम् वाईटी, ओम प्राइवेटाइजिंग!
ओम् छह महीने में एक करोड़ रोजगार
अरे बोलने में अपने बाप का क्या जाता है यार?
ओम् फिक्की, ओम् सीआईआई, ओम् एसोचैम
ओम् हुजूर, माईबाप, 'ऐट योर सर्विस, आई ऐम!
ओम् जनता, ओम् छात्र, ओम् मजूर
सबको अभी ठीक करता हूं हुजूर!
ओम् लाठी, ओम् गोली, ओम् कड़े कदम,
ओम् बम-बम, बम-बम, बम-बम-बम!

['दिशा छात्र संगठन' की केन्द्रीय दीवार पत्रिका 'ज्वार' (सितम्बर 2001) से साभार]

आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

भारतीय क्रान्ति का रास्ता मेहनतकश वर्गों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद- पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति का रास्ता है। यह नई समाजवादी क्रान्ति का रास्ता है। यह शहीदे आज़म भगतसिंह का रास्ता है। क्रान्ति ही नाउम्मीदों की उम्मीद है। रसातल के अंधेरे में जीने वालों की ज़िन्दगी की रोशनी है। मृत्यु के अवसाद को तोड़ने वाला उत्सव का आह्लाद है। "आह्वान" इस तूफान का मुक्त कंठ से आह्वान करता है। "आह्वान" इस तूफान का आनन्द लेने के लिए सभी युवा तूफानी पितरेल पक्षियों का न्यौता देता है।

पूरा भारतीय समाज आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। अब यह सच्चाई एकदम उजागर हो चुकी है कि रुग्ण-विकलांग, बूढ़ा-बौना भारतीय पूंजीवाद आम जनता को कुछ भी सकारात्मक नहीं दे सकता। मेहनतकशों की ज़िन्दगी को इसने लूटमार, उत्पीड़न-शोषण और असह्य पीड़ा-व्यथा के अंधेरे रसातल में ढकेल दिया है। अथाह दुखों के सागर में ऐश्वर्य के द्वीप और विलासिता की मीनारें, संसद में पूंजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों के बहसबाजों की धींगामुश्ती, विदेशी लुटेरों को लूट की खुली छूट, भ्रष्टाचार के नित-निरन्तर भंग होते कीर्तिमान, संवेदनाओं को कुंद करती विकृत-बीमार साम्राज्यवादी-पूंजीवादी संस्कृति का धीमा जहर, संचार माध्यमों पर पूंजी की सर्वग्रासी पकड़, दिवालिया अर्थतंत्र, नंगा राजनीतिक तंत्र, बिकता न्याय, बेतहाशा महंगी होती जा रही निरर्थक अनुपयोगी-अवैज्ञानिक शिक्षा, मामूली चिकित्सा के अभाव में मरते लोग – यही आज का वह नारकीय सत्य है जिसे फिलहाल, हारी हुई मानसिकता के शिकार लोगों ने अपनी नियति मान लिया है। इसे बदलने का रास्ता क्रान्ति का रास्ता है। क्रान्ति कठिन है, क्रान्ति का रास्ता लम्बा है, ध्वंसकारी है, पर इसके बिना नये का निर्माण असम्भव है। यही आज का ठण्डा सत्य है –» नंगा सत्य है – पर यही मुक्तिदायी सत्य है। यही 'आह्वान' का निर्भीक उद्घोष है।

इस अंक में

अपनी ओर से

एक हजार एक कारण हैं कि हम विद्रोह करें... 5-6

सामयिकी

अमेरिकी शासकों के हाथ खुद अपनी जनता के खून से रंगे हैं 8-9

दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिका के काले कारनामे 10-11

शिक्षा जगत

इतिहास से भयाक्रान्त भगवा गिरोह 12-13

प्रसिद्ध इतिहासकार रामशरण शर्मा ... 13

छात्र राजनीति

.... विकल्प की बेचैनी 14

छात्रों-नौजवानों के लिए जनरल नालेज के जरूरी सबक 15

उदारीकरण-कुचक्र

विकास का ढपोरशंखी राग, छिनती नौकरियां .. 16-17

विरासत

भगतसिंह की सुनो ! क्रान्ति की राह चुनो !! 18-19

समाज

जातिगत - अपमान - उत्पीड़न के लिए एक जबर्दस्त सामाजिक - सांस्कृतिक आन्दोलन की जरूरत 20-24

भारत में प्रेम एक साहसिक विद्रोह है! 25-26

साहित्य

कहानी: दान्को का जलता हुआ हृदय : मक्सिम गोर्की 27-29

कविता : अगर तुम युवा हो : शशि प्रकाश 7

विविधा 33-34

पैदा हुई पुलिस तो इबलीस ने कहा... 30-31

बोलते आंकड़े 31

गतिविधियां

सर्दियां तुम्हारी वसन्त हमारा 32-33

आह्वान
कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 10 अंक 1 जुलाई-सितम्बर 2001

सम्पादक मण्डल
मुकुल
कविता
अभिनव
सन्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
छह रुपए
वार्षिक
तीस रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय: संस्कृति कुटीर कल्याणपुर, गोरखपुर-273001 फोन 338922

स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं द्वारा आफसेट प्रेस, इलाहीबाग, गोरखपुर से मुद्रित

भगतसिंह ने कहा

अगर कोई सरकार जनता को उसके इन मूलभूत अधिकारों से वंचित रखती है तो जनता का केवल यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि ऐसी सरकार को समाप्त कर दें।

–

हम वर्तमान ढांचे के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में हैं। हम वर्तमान समाज को पूरे तौर पर एक नये सुगठित समाज में बदलना चाहते हैं। इस तरह मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण असम्भव बनाकर सभी के लिए सब क्षेत्रों में पूरी स्वतंत्रता विश्वसनीय बनायी जाये। जब तक सारा सामाजिक ढांचा बदला नहीं जाता और उसके स्थान पर समाजवादी समाज स्थापित नहीं होता, हम महसूस करते हैं कि सारी दुनिया एक तबाह कर देने वाले प्रलय-संकट में है।

(कमिश्नर, विशेष ट्रिब्यूनल, लाहौर साजिश केस,लाहौर के नाम भगतसिंह सहित छह क्रान्तिकारियों द्वारा लिखे पत्र से)

एक अपील

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, पफण्डिंग एंजेंसियों, पूंजीवादी घरानों, एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। जनता का वैकल्पिक मीडिया सिपर्फ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए—हमारी यह दृढ़ मान्यता है।

अतः हम अपने सभी पाठकों—शुभचिन्तकों—सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।

■ पाठक मंच

सहगामिनी

मैं औरत हूं, मात्र औरत
जिसे तुमने कहा था सीता, वही सीता
जो नहाई थी अग्नि में, समाई थी धरती में,
दी थी परीक्षाएं मर्यादाओं की
ताकि कहला सको, तुम मर्यादा पुरुषोत्तम
इतिहास के किसी पीले पड़े पृष्ठ पर
मैं ही पांचाली भी हूं
जिसे तुम्हीं ने लगाया था दांव पर
तुम्हीं ने हरा था चीर, करना चाहा था निर्वस्त्र
और हे पौरुष के धनी,
लज्जा बचाने को तुम्हीं बने थे कृष्ण
और आज जब क्रोध से कांपते हुए
रक्ताभ आंखों से निगलजाने वाली दृष्टि गड़ाकर
चीखते हो कि, आखिर चाहती क्या हो
तब तुम्हारे सम्मुख, खड़ी होती हूं मैं
तुम्हारी मां नहीं, बहन नहीं,
शर्मीली प्रेयसी भी नहीं
बल्कि मानवता का आधा हिस्सा
पर क्या मेरी समझ इतना बड़ा जुर्म है, जिससे
इस कदर भयभीत हो।
रुको, हाथ उठाने से पहले,
मैं विद्रोहिणी बनना नहीं चाहती
न ही क्रान्ति करना चाहती हूं,
मैं तो एक जीवन जीना चाहती हूं
जो प्रातः खिले फूलों की तरह ताजा हो
तुम्हारे बिना नहीं, तुम्हारे साथ
कंधे से कंधा मिलाकर
मेरे साथी पुरुष, सहगामिनी बनना चाहती हूं,
अनुगामिनी नहीं।

डा. शोभा बारहट, जयपुर

स्वतन्त्रता

तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो
तुममें कुछ ऐसा है
जो मेरे मन की गहराइयों को छू लेता है
तुम सृजनशील हो, संवेदनशील हो
तुममें एक सुन्दर भविष्य की
जमीन दिखाई पड़ती है
तुम्हारी कलम, तुम्हारी रचनाएं
जीवन्त हैं, तुम्हारी आंखों की तरह
जो तुम सोचते हो, रचते हो
जैसे सपने देखा करते हो तुम
वैसे ही मैं भी सोचा, रचा
और देखा करती हूं,
जीवन के प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण
मेरे बहुत क़रीब है
क़रीब-क़रीब मेरा भी वही लक्ष्य है
जो तुम्हारा है
और कुछ अनुचित न होगा
अगर मैं कहूं, कि इन तमाम बातों के कारण
मैं तुमसे प्रेम भी करती हूं
फिर भी मेरे दोस्त
मुझे तुमसे भी ज्यादा
एक चीज़ प्रिय है
और वह है, मेरी स्वतंत्रता
मेरी स्वतंत्र चेतना, स्वतंत्र चिन्तन
और स्वतंत्र रचना
जो तुमसे प्रभावित तो है
पर संचालित नहीं
जो तुम्हारा साहचर्य तो चाहती है
पर प्रभुत्व नहीं
तुम्हें और अपनी आज़ादी को
एक साथ चाहती हूं मैं
दोनों में से किसी को भी खोना
असह्य है, मेरे लिये
लेकिन फिर भी
अगर तुम अड़ ही गये
अपने प्रभुत्व की खातिर
तो मैं,
स्वतंत्रता को चुन लूंगी।

मनीषा पाण्डेय, इलाहाबाद

महत्वपूर्ण पर नियमित करें

पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रहा 'आह्वान' लगातार बेहतरी की ओर बढ़ रहा है। सारगर्भित एवं आह्वान मूलक सामग्री हम छात्रों के भीतर एक नये ऊर्जा का संचार कर रहा है। लेकिन इसकी अनियमितता हमें ज्यादा खटकती है। तमाम दिक्कतों के बावजूद इसे नियमित निकालें तो बेहतर होगा।

'जनवरी-मार्च '01 अंक में यूं तो सभी सामग्री महत्वपूर्ण है, लेकिन 'एक सपने को टालते रहने से क्या होता है' और 'नई सदी में भगतसिंह की स्मृति' कविता ज्यादा प्रेरणादायी है। 'तरुणाई का तराना' उपन्यास पढ़ने के प्रति आकर्षण पैदा तो हुआ है, लेकिन यह उपलब्ध नहीं है। इसके प्रकाशन की प्रतीक्षा रहेगी।

मनोज कुमार, आवास-विकास, सूरजकुण्ड कालोनी, गोरखपुर

अपनी ओर से

एक हजार एक कारण हैं कि हम विद्रोह करें और इनमें से चन्द एक ही काफी है कि हम अपनी तैयारियां तेज कर दें

आर्थिक "सुधारों" का बीता दशक देश के आम अवाम के लिए अकथनीय पीड़ा-व्यथा का दशक साबित हुआ है। लेकिन हमारे जालिम हुक्मरान अवाम को रौंदते-कुचलते आगे बढ़ते जा रहे हैं – और अधिक बेशर्मी के साथ, और अधिक उद्धत – आक्रामक अन्दाज में "सुधारों" के नये चरण में नयी-नयी घोषणाएं की जा रही हैं। मौत की घाटियों में भी रास लीला रचाने वालों को भला जनता के दुख-दर्द से क्या लेना-देना! सोचना तो उन विद्रोही युवाओं को है जो इस विनाश-यात्रा के मूकदर्शक नहीं बने रह सकते, जो अपने लोगों और अपने देश से सच्चा प्यार करते हैं।

भूमण्डलीकरण के नाम पर जारी इस विनाश यात्रा में छंटनी-तालाबन्दी, बेकारी, भुखमरी और व्यापक सामाजिक तबाही की जो स्थितियां सामने आयी हैं, उसकी तस्वीर न तो अखबारी रिपोर्टों से उभर सकती है और न ही किसी तरह की आंकड़ेबाजी इसे चित्रित कर सकती है। अगर आपके पास एक धड़कता हुआ दिल है और आंखें खुली तो आप उस चरम निराशा और बेबसी को महसूस कर सकते हैं जो समूचे परिवार की आत्महत्याओं की खबरों के बीच दबी रहती है। महीने में आधे दिन खाली हाथ लेबर चौकों से लौट आ रहे दिहाड़ी मज़दूर, कारखाने के गेट पर चस्पां की जा रही तालाबन्दी की नोटिसें, छंटनी की फेहरिस्त, किसी अनजानी उम्मीद में नौकरियों के फार्म बेचने वालों की दुकानों पर उमड़ती युवाओं की भीड़, प्रतियोगिता परीक्षा का रिजल्ट देखकर एक बार फिर मायूस होकर घर लौटते युवा, लकदक-जगमग बाज़ारों से कुंठित-हताश लौटते खरीदार, एक बार फिर रिश्ता पक्का न होने पर अपनी जवान बेटी से नज़रें चुराते बाप और किसी सदर अस्पताल के बरामदे में बीमार बच्चे को भरती कर लेने के लिए रोता-गिड़गिड़ाता दूर-दराज गांव से आया कोई ग़रीब ...।

विश्व पटल पर जो घटनाएं घट रही है। उनसे नयी सदी में साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के मौजूदा अन्धकार युग के अवसान के संकेत मिल रहे हैं। इन संकेतों के ब्यौरों में जाया जा सकता है या विश्व परिस्थितियों का व्याख्या-विश्लेषण भी किया जा सकता है लेकिन बहुतेरे कारण इतने साफ दिख रहे हैं कि एक आम समझ के नौजवान के लिए भी यह समझना कठिन नहीं है कि उन्हें इस निज़ामे कोहना के खिलाफ खुली बगावत का ऐलान कर देना चाहिए।

भूमंडलीकरण की इस जहरीली आबो-हवा में पूरे भूमंडल पर मानवता की पीड़ा-व्यथा का यही मंजर पसरा हुआ है। अमेरिकी बमबारी से क्षत-विक्षत इराक में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिबन्धों के कारण दवा के अभाव में हर साल मरते लाखों बच्चे, फिलिस्तीन अवाम के स्वाभिमान और आज़ादी की चाहत को बमों से उड़ा देने की उद्दंड इस्रायली कोशिशें, अफ्रीकी देशों में फैली भुखमरी और कुपोषण के हालात, खुद पश्चिमी दुनिया के "स्वर्गों" में बढ़ती बेकारों की भीड़, सामाजिक तनाव, हताशा-निराशा ... ये भूमण्डलीकरण के दौर में पूरे भूमण्डल पर फैली मानवता की धूसर-बदरंग तस्वीर के कुछ टुकड़े मात्र हैं। लेकिन इनसे पूरी तस्वीर साफ-साफ देखी जा सकती है।

जब दुनिया के ये हालात हों और देश के भीतर आम जनजीवन की आम तबाही का यह आलम तो ऐसे में सिर्फ फीस बढ़ोत्तरी, सीटों में कटौती या कैम्पस की कुछेक सुविधाओं में कटौती के मुद्दे पर ही सीमित नहीं रहा जा सकता। जब देश की सत्ता चरम निरंकुशता की ओर तेजी से सरकती जा रही हो और हवा गोलियों की गन्ध से घुट रही हो तो क्या सिर्फ कैम्पसों के प्रशासन की निरंकुशता के खिलाफ लड़ने तक ही सीमित रहा जा सकता है। कैम्पस की ये लड़ाइयां जरूरी हैं, बेहद जरूरी, लेकिन इतना ही जरूरी यह भी है, बल्कि कहीं ज्यादा जरूरी कि आज छात्र-युवा समाज के इन वृहत्तर सवालों पर सोचें और नयी सदी में संघर्षों की नयी दिशाएं, नयी राहें खोजें।

देश के भीतर निजीकरण-उदारीकरण के पिछले एक दशक के सफर ने, 1947 से लेकर अब तक के दौर

ने, साम्राज्यवाद की पूरी एक शताब्दी ने, आर्थिक नव उपनिवेशवाद के पिछले एक-डेढ़ दशक के दौरान घटी घटनाओं ने अब हर तरह से यह सिद्ध कर दिया है कि साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का एक-एक पल अब हमारे लिए भारी है। इनका नाश जीवन और सृजन प्रगति की शर्त है। इनके विरुद्ध विद्रोह उचित ही नहीं अनिवार्य है।

विश्व पटल पर जो घटनाएं घट रही है। उनसे नयी सदी में साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के मौजूदा अन्धकार युग के अवसान के संकेत मिल रहे हैं। इन संकेतों के ब्यौरों में जाया जा सकता है या विश्व परिस्थितियों का व्याख्या-विश्लेषण भी किया जा सकता है लेकिन बहुतेरे कारण इतने साफ दिख रहे हैं कि एक आम समझ के नौजवान के लिए भी यह समझना कठिन नहीं है कि उन्हें इस निज़ामे कोहना के खिलाफ खुली बगावत का ऐलान कर देना चाहिए।

नौजवानों को इस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह कर देना चाहिए क्योंकि वर्तमान आपदाओं से मुक्ति का यही एकमात्र रास्ता है। पूंजीवाद के किसी भी माडल के पास महंगाई, बेरोजगारी से मुक्ति का उपाय नहीं है। यह अन्तिम तौर पर सिद्ध हो चुका है कि पूंजीवादी विकास का एकमात्र अर्थ आंसुओं के महासमुद्र में ऐश्वर्य के द्वीपों और विलासिता की मीनारों का निर्माण है।

नयी सदी के इस पहले वर्ष में हम अपने देश की आम जनता के बहादुर सपूतों का इस निज़ाम के खिलाफ खुली बगावत के लिए आह्वान करते हैं। छात्रों-युवाओं से हमारा कहना है कि गीली लकड़ी की मानिन्द धुआंने-सुलगने के बजाय भभककर जल उठो! विद्रोह करो!

हमें इसलिए विद्रोह कर देना चाहिए कि यह इतिहास का निर्देश है। लूटखसोट, मारकाट और युद्धों के कुकर्मों ने साम्राज्यवाद के पापों का घड़ा भर दिया है। इतिहास ने उसे मौत की सजा सुना दी है। सवाल सिर्फ यह है कि मेहनतकशों के बहादुर सपूत इस हुक्म की तामील कब करते हैं।

हमें इसलिए विद्रोह कर देना चाहिए क्योंकि विश्व स्तर पर पूंजीवाद की संस्कृति उन्माद, बीमारियों, पागलपन, अकेलापन और अलगाव की संस्कृति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गयी है। पूंजीवादी जनवाद का असली पूंजीधर्मी चरित्र नंगा हो चुका है और अब इसकी ऐतिहासिक सकारात्मकता निश्शेष हो चुकी है।

यदि हम एक जिन्दा कौम के नौजवान हैं तो हमें विद्रोह की तैयारियां तेज कर देना चाहिए। यह विद्रोह न्यायसंगत ही नहीं बल्कि शहीदे-आज़म भगतसिंह के शब्दों में कहें तो हम नौजवानों का बुनियादी कर्तव्य है।

यथास्थिति को झेलने की जगह बगावत का झण्डा बुलन्द कर देने के लिए एक हजार एक कारण आज मौजूद हैं, पर ध्यान से सोचें चन्द एक ही काफी हैं कि हम अपनी तैयारियां तेज कर दें।

इसलिए, नयी सदी के इस पहले वर्ष में हम अपने देश की आम जनता के बहादुर सपूतों का इस निज़ाम के खिलाफ खुली बगावत के लिए आह्वान करते हैं। छात्रों-युवाओं से हमारा कहना है कि गीली लकड़ी की मानिन्द धुआंने-सुलगने के बजाय भभककर जल उठो! विद्रोह करो! इसकी तैयारी आज ही से शुरू कर दो! विद्रोह करो! और विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो! ❑

शहीदे आज़म के जन्मदिवस 27 सितम्बर के अवसर पर

"हम जनता का ध्यान इतिहास में बराबर दोहराये गये इस सबक की ओर दिलाना चाहते हैं कि गुलामी और बेबसी से कराहती जनता को कुचलना आसान है, परन्तु विचार अमर होते हैं और दुनिया की कोई ताकत उन्हें कुचल नहीं सकती। दुनिया में अनेक बड़े बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, परन्तु जनसाधारण ने जिन विचारों से प्रेरित होकर इन्हें समाप्त किया वे आज भी जीवित हैं

(केन्द्रीय असम्बली में भगतसिंह-बटुकेश्वर दत्त द्वारा बम विस्फोट के बाद फेंके पर्चे से)

अगर तुम युवा हो

कविता

शशि प्रकाश

स्मृतियों से कहो
पत्थर के ताबूत से बाहर आने को।

गिर जाने दो
पीले पड़ चुके पत्तों को,
उन्हें गिरना ही है।

बिसूरो मत,
ना ही ढिंढोरा पीटो
यदि दिल तुम्हारा सचमुच
प्यार से लबरेज़ है।

तब कहो कि विद्रोह न्यायसंगत है
अन्याय के विरुद्ध।

युद्ध को आमंत्रण दो
मुर्दा शान्ति और कायर-निठल्ले विमर्शों के विरुद्ध।

चट्टान के नीचे दबी पीली घास
या जज़्ब कर लिये गये आंसू के कतरे की तरह
पिता के सपनों
और मां की प्रतीक्षा को
और हां, कुछ टूटे-छलके निश्चयों और यादों को भी,
रखना है साथ
जलते हुए समय की छाती पर यात्रा करते हुए
और तुम्हें इस सदी को
ज़ालिम नहीं होने देना है।

रक्त के सागर तक फिर पहुंचना है तुम्हें
और उससे छीन लेना है वापस
मानवता का दीप्तिमान वैभव,
सच के आदिम पंखों की उड़ान,
न्याय की गरिमा
और भविष्य की कविता
अगर तुम युवा हो।

अमेरिकी सत्ताधारियों के हाथ खुद अपनी जनता के खून से रंगे हैं

कात्यायनी

'जिन्होंने ऐसा जघन्य कांड हमारे देश में आकर किया है हम उन्हें उनके छिपने के बिलों से निकालकर धुएं में उड़ा देंगे। हम उन्हें दौड़ा-दौड़ाकर मारेंगे और उनके साथ विधिवत न्याय करेंगे।' किसी चालू बम्बइया फिल्म के खलनायक जैसी भाषा में ये धमकियां 'वर्ल्ड ट्रेड सेंटर' और पेंटागन पर आत्मघाती आतंकवादी हमलों के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश जूनियर ने उन अज्ञात आतंकवादियों को दी जिनके बारे में घटना के एक हफ्ते बाद भी ठीक-ठीक नहीं पता चल सका है। अभी तक सिर्फ शक के आधार पर ओसामा बिन लादेन को इन हमलों का जिम्मेदार मानकर "अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद" के खिलाफ लम्बी लड़ाई लड़ने के संकल्प लिये जा रहे हैं और दुनिया के लुटेरे शासक बढ़-चढ़कर इस लड़ाई में साथ देने का आश्वासन दे रहे हैं।

लेकिन बुश, क्लिंटन, रीगन, टोनी ब्लेयर, जान मेजर या थैचर जैसों की जमात आतंकवादियों के हाथों हजारों बेगुनाहों की मौत की भर्त्सना भला किस मुंह से कर रही है? सद्दाम हुसैन को सजा देने के लिए जब वे बगदाद पर अन्धाधुन्ध बमबारी करते हैं तो क्या उन्हें वहां के बेगुनाह आम लोगों की रत्ती भर भी याद आती है? क्या यह भूला जा सकता है कि ईरान के विरुद्ध सद्दाम हुसैन को इस्तेमाल करने और उन्हें भरपूर मदद करके खाड़ी युद्ध को लम्बे समय तक चलाने का काम अमेरिका ने ही किया था। दुनिया की जनता यह भी नहीं भूली होगी कि ओसामा बिन लादेन के आतंकवादी ग्रुप को अफगानिस्तान पर हावी सोवियत साम्राज्यवाद और उसके द्वारा समर्थित सत्ता के विरुद्ध अमेरिका ने ही धन, हथियारों और प्रशिक्षण की भरपूर मदद देकर खड़ा किया था और दक्षिण एशिया में अपने हितों के मद्देनजर उसने कभी गुलबुद्दीन हिकमतयार से लेकर तालिबान तक को हर तरह सहायता दी थी।

दुनिया पर अपनी साम्राज्यवादी चौधराहट कायम करने के लिए स्वयं अमेरिका जिन नीतियों पर अब तक चलता रहा है और आगे भी, इस नरसंहार के बाद भी जिन पर चलने से वह बाज नहीं आयेगा, उनका खामियाजा तो उसे भी भुगतना ही होगा। ग्यारह सितम्बर को डब्ल्यू.टी.सी. की 110 मंजिला इमारत के धराशायी होने और अभेद्य माने जाने वाले पेंटागन कार्यालय पर हमले के बाद क्यूबा के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रो ने ठीक ही कहा कि अमेरिका ने ही कभी आतंकवाद को पालने-पोसने का काम किया था, अब उसे इसका खामियाजा भुगतना पड़ रहा है।

यह अमेरिकी हुकूमत ही है जिसने विश्व स्तर पर आतंकवाद को, धार्मिक कट्टरपंथ को पैदा किया है और मजबूत बनाया है। विश्व व्यापार केन्द्र पर हमला चाहे ओसामा बिन लादेन के लोगों ने किया हो, या चाहे किसी फिलिस्तीनी ग्रुप ने, चाहे लातिनी अमेरिका के किसी आतंकवादी क्रांतिकारी संगठन ने किया हो या हिरोशिमा-नागासाकी का बदला लेने के लिए जापान की किसी 'रेड आर्मी' ने या फिर अमेरिका के भीतर के ही किसी आतंकवादी ग्रुप ने किया हो, इस नरसंहार की जिम्मेदारी बुनियादी तौर पर अमेरिकी शासक वर्ग की ही मानी जायेगी। उस हत्यारे शासक वर्ग की, जो फिलिस्तीनियों की नारकीय ज़िन्दगी के लिए, अंगोला और कई अन्य अफ्रीकी देशों में दशकों से जारी खूनी गृहयुद्धों के लिए तथा लातिन अमेरिकी देशों में अपने वर्चस्व को बनाये रखने के उद्देश्य से प्रत्यक्ष-परोक्ष हस्तक्षेप करता रहा है।

बेशक, आतंकवादियों की यह कार्रवाई निराशा और बदले की भावना से प्रेरित रही है। यह और ऐसी तमाम कार्रवाइयां अमेरिकी प्रभुत्ववाद और पूरे साम्राज्यवादी तंत्र को नष्ट नहीं कर सकतीं। लेकिन, आज अमेरिका और अमेरिका के सभी सहयोगी देशों की सरकारें और मुख्य धारा की मीडिया "मानवता पर हमले" बातें अगर कर रहा है तो यह साम्राज्यवादी-पूंजीवादी दुनिया के नन्दन-कानन में व्याप्त भय और बदहवासी के सिवा और कुछ नहीं है। इनका "मानवतावाद" उस समय कहां उड़नछू हो जाता है जिनकी मुनाफे की हवस, उससे प्रेरित-संचालित राजनीति और युद्धों से प्रतिदिन पूरी पृथ्वी पर दसियों हजार लोग मौत के मुंह में समा जाते हैं। न्यूयार्क-वाशिंगटन की तबाही त्रासद है, लेकिन इतनी महंगी कीमत चुकाकर शायद अमेरिकी जनता यह समझ सके कि यह उनके शासकों की नीतियां ही हैं जिन्होंने यह विनाश का मंजर रचा है।

इस महाविनाश के बाद शायद अमेरिकी अवाम यह समझ सके कि वियतनाम को नापाक बमों और बारूदी सुरंगों से पाटने वाले,

कोरियाई जनता पर कहर बरपा करने के बाद देश को बांट देने वाले, इराक की आर्थिक नाकेबन्दी कर बरसों बम बरसाने वाले, चालीस वर्षों से क्यूबा की आर्थिक नाकेबन्दी करने वाले, अतीत में फिलिप्पींस और इंडोनेशिया के तानाशाहों की पीठ पर खड़े होकर लाखो लोगों को कत्लेआम करवाने वाले उनके सत्ताधारियों के खिलाफ पूरी पृथ्वी पर नफरत की भट्ठी धधक रही है। हालांकि नरसंहार के बाद अमेरिकी शासक ठीक उसी प्रकार ओसामा बिन लादेन को शैतान के रूप में प्रस्तुत कर अमेरिकी अन्ध महाराष्ट्रवादी ('बिग नेशन शावनिज्म') भावनाओं को भड़काने की कोशिश में जुट गये हैं जिस प्रकार उन्होंने सद्दाम हुसैन के साथ किया था। ऐसा करके अमेरिकी सत्ताधारी विश्व प्रभुत्व की अपनी चौधराहट पर लगे तगड़े झटके से उबरने की कोशिश में एक नया विनाश रचने की भूमिका बना रहे हैं और इस सच्चाई को अमेरिकी जनता की आंखों से ओझल करने की कोशिश कर रहे हैं कि खुद उनके हाथ अपने लोगों के खून से रंगे हैं।

दरअसल, अमेरिकी शासकों को न्यूयार्क-वाशिंगटन में हुई तबाही की और दसियों हजार लोगों के मारे जाने की फिक्र नहीं है। डब्ल्यू.टी.सी. की जुड़वां मीनारों से भी भव्य मीनारें तो दुनिया को लूटकर फिर से खड़ी हो जायेंगी. और हजारों-हजार ज़िन्दगियों का सौदा तो पूंजी के सौदागर रोज ही करते हैं। लेकिन इस महाविनाश के बाद शायद अमेरिकी अवाम यह सोचने पर मजबूर हो कि डब्ल्यू.टी.सी. और पेंटागन पर हमले के बाद आखिर क्यों बेरूत के शरणार्थी शिविरों से लेकर गाजा पट्टी और पश्चिमी तट तक, स्त्रियों-बच्चों सहित फिलिस्तीनियों का सैलाब जश्न मनाने सड़कों पर उतर आया? यही नहीं, अधिकांश अरब देशों की जनता में, खासकर इराक में जश्न का माहौल क्यों है? सर्बिया से लेकर लातिन अमेरिका तक के देशों में बुद्धिजीवी और छात्र आतंकवाद की भर्त्सना से अधिक इस बात की चर्चा क्यों कर रहे हैं कि यह अमेरिका की भूमंडलीय चौध राहट का नतीजा है और यदि इन नीतियों में बदलाव नहीं आता तो इसका खामियाजा आगे भी अमेरिकी जनता को उठाना पड़ेगा।

यह साफ है कि आज अमेरिकी जनता जिस मौत की घाटी से गुजर रही है उसे स्वयं अमेरिकी शासक वर्ग ने रचा है। यह भी साफ दिख रहा है कि किसी भी साम्राज्यवादी देश के शासक की तरह जार्ज बुश विश्व स्तर पर आतंकवाद को बढ़ावा देने वाली अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने की कोई मंशा नहीं रखते। इसलिए, यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि अमेरिका न सिर्फ आतंकवाद का संरक्षण-संपोषक रहा है, बल्कि वह स्वयं एक आतंकवादी देश है। वह सामरिक आतंकवाद से लेकर आर्थिक आतंकवाद तक में लिप्त है। न्यूयार्क-वाशिंगटन में हुए आतंकवादी हमले उसके आतंकवाद का सिर्फ आतंकवादी प्रतिकार मात्र है। यह एक किस्म का 'प्रति आतंकवाद' (काउण्टर टेररिज्म) है।

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की इमारत अमेरिकी वित्तीय पूंजी की शक्तिमत्ता का स्मारक थी और पेंटागन मुख्यालय उसकी सामरिक प्रभुता का प्रतीक चिह्न। इन दोनों के धराशायी होने से अमेरिकी उद्धत अहम्मन्यता का गुब्बारा तो पंक्चर हुआ ही है, अन्य सभी साम्राज्यवादी हुकूमतें भी एकबारगी अकबका सी गयी हैं। कोई भी इस आतंकवादी कार्रवाई से सहमत नहीं हो सकता जिसमें हजारों बेगुनाह लोग मारे गये, लेकिन सच्चाई का यह एक ऐसा पहलू है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। साथ ही, इतिहास के इस निर्मम वस्तुगत तर्क की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि तमाम-तमाम युद्धों में (और आतंकवाद भी एक युद्ध ही है, यह तो बुश भी मानते हैं) सबसे अधिक विनाश तो बेगुनाहों को ही झेलना होता है। इसलिए बुनियादी बात तो यह है कि युद्ध के बुनियादी कारणों पर ही सोचा जाये।

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि अमेरिका न सिर्फ आतंकवाद का संरक्षण-संपोषक रहा है, बल्कि वह स्वयं एक आतंकवादी देश है। वह सामरिक आतंकवाद से लेकर आर्थिक आतंकवाद तक में लिप्त है। न्यूयार्क-वाशिंगटन में हुए आतंकवादी हमले उसके आतंकवाद का सिर्फ आतंकवादी प्रतिकार मात्र है। यह एक किस्म का 'प्रति आतंकवाद' (काउण्टर टेररिज्म) है।

आतंकवाद महज पागलपन या मुट्ठी भर लोगों का जुनून नहीं होता। पहली बात, कभी-कभी इतिहास और समाज की वैज्ञानिक समझ के अभाव में, व्यापक जनता को जागृत व संगठित किये बिना, मुट्ठी भर बहादुर लोग अपने बहादुराना कारनामों से अन्याय का प्रतिरोध करते हैं और यह अपेक्षा करते हैं कि उनकी कुर्बानियों की बदौलत लोग उठ खड़े होंगे। यह सोच आतंकवाद के एक या दूसरे रूप की ओर ले जाती है। दूसरी बात, कभी-कभी आतंकवाद असह्य दमन-उत्पीड़न या आक्रमण की महज एक अन्धी प्रतिक्रिया होती है, जो अक्सर किसी न किसी प्रकार के मजहबी या पुनरुत्थानवादी आस्था से बल पाती है और मसीहा तथा उनके अनुयाइयों की शक्ल में अपने को देखती है। इस आत्मसम्मोहक मतिभ्रम के पीछे एक गहरी निराशा काम करती है। **प्राय: जनक्रान्तियां जब पराजित होती हैं, जब गतिरोध और उलटाव के दौर आते हैं, तो जनता में व्याप्त गहरी निराशा की जमीन से, मध्य वर्ग के बीच से ऐसी ताकतें पैदा होती है। इतिहास के रंगमंच पर जब जनक्रान्तियों के वास्तविक नायक नहीं होते तो उन लोगों को भी उत्पीड़ित जनता अपना नायक मान लेती है जो आत्मघाती हदों तक बहादुराना कारनामों द्वारा अन्यायी सत्ता को चुनौती देते हैं।** यह साम्राज्यवादियों की जघन्य करतूतें हैं और विश्वस्तर पर आज जनता में व्याप्त निराशा का तात्कालिक माहौल है कि ओसामा बिन लादेन में भी जनता नायक की तलाश कर रही है।

बहरहाल, साम्राज्यवादी इस विनाश के बाद भी अपनी करतूतों से बाज नहीं आयेंगे। वे आतंकवाद के "अदृश्य" शत्रु को तबाह करने के लिए अफगानिस्तान, इराक, फिलिस्तीन या लेबनान में या दुनिया के किसी दूसरे कोने में महाविनाश का कोई नया तांडव रचेंगे। इसकी एक प्रतिक्रिया तो यह होगी कि नये-नये दर्जनों ओसामा बिन लादेनों के सैकड़ों आत्मघाती दस्ते पैदा हो जायेंगे और नतीजतन अमेरिकी जनता भी साम्राज्यवादी नीतियां बदलने के लिए अपने शासकों पर दबाव बढ़ा देगी। दूसरी प्रतिक्रिया वह होगी जो बमों का "कालीन" बिछा देने के बाद वियतनाम में हुई थी।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिका के काले कारनामे

• सुरेन्द्र कुमार

आतंकवाद के खिलाफ "अंतिम युद्ध" छेड़ने और "इंसाफ" करने के दावे कर रहा अमेरिका खुद विश्व इतिहास का सबसे बड़ा आतंकवादी है जिसके जघन्य अपराधों की फेहरिस्त इतनी लम्बी है कि उसे यहां गिनाना असम्भव है। आज जिस ओसामा बिन लादेन को अमेरिका और उसके तलुवे चाटने वाले भारतीय मीडिया ने वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हमलों का दोषी करार देकर उसके एवज में हजारों बेगुनाहों को सजा देने की कार्रवाई शुरू कर दी है, उसे पैदा किसने किया? दुनिया की सबसे संगठित आतंकवादी संस्था सीआईए ने ही तो उसे पाला-पोसा और अफगानिस्तान में कम्युनिज्म के हौवे से लड़ने के नाम पर वह सब कुछ दिया जिसने अन्ततः ओसामा को भस्मासुर बना डाला।

11 सितम्बर को जब आतंकवाद के पालनहारों और मौत के सौदागरों को 1812 के बाद से पहली बार अपनी ही धरती पर अपनी सैन्य शक्ति और वित्तीय बाहुबल के प्रतीकों को ध्वस्त होते देखना पड़ा तो सामने मुंह बाए खड़ी भयावह आर्थिक मंदी के बीच अपने सारे पिछले पापों पर पर्दा डालने के लिये पूरे अमरीकी प्रचारतंत्र की तोपों का मुंह ओसामा की ओर मोड़ दिया गया। पूरा प्रयास यह रहा कि इस सारे कर्णभेदी कोलाहल के बीच नवउपनिवेशवाद के बीते दिनों के घिनौने इतिहास और आने वाले कल की महाशक्तिवादी रणनीति की ओर से सबका ध्यान हटा दिया जाये। इस बीच मीडिया हजारों लोगों की लोमहर्षक मृत्यु तक को बेचने में लगा रहा।

सारी दुनिया को अपने बूटों के तले रखने वाले अमरीका के घर में घुसकर आतंकवादियों ने उसकी नाक तोड़ दी, इसलिये अमरीका का बौराये जानवर की तरह शोर मचाना स्वाभाविक है। और जब बॉस की नाक लाल हो गयी हो तो जाहिर है कि भारतीय शासक वर्ग जैसे उसके लग्गू-भग्गू भी उछलकूद मचायेंगे ही और जमीन पर लाठियां पटकेंगे ही। और उनका भोंपू--पूरा का पूरा मीडिया गला फाड़-फाड़कर बुश और पावेल और रम्सफेल्ड और ब्लेयर की आवाज में चिल्लायेगा ही।

लेकिन आइये हम जरा सिर्फ पिछले 50 बरस में अमरीकी आतंकवाद की चंद कारगुजारियां को याद कर लें।

वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हमले के ठीक 28 साल पहले 11 सितम्बर के ही दिन चिली में सीआईए की सक्रिय मदद से साल्वादोर अलेन्दे की लोकप्रिय सरकार का तख्ता पलटने के बाद जरनल पिनोशे द्वारा कराये कत्लेआम में 50,000 हजार लोग मारे गये थे। 1967 में इण्डोनेशिया में अमरीका की शह पर 50 लाख लोग मौत के घाट उतार दिये गये क्योंकि वे कम्युनिस्ट थे या उनके साथ सहानुभूति रखते थे। पिछले 10 वर्षों में इराक में अमरीकी प्रतिबन्धों के कारण 5 लाख छोटे बच्चे मर चुके हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से ही अमरीका किसी न किसी देश पर हमले और बमबारी लगातार करता रहा है और पश्चिम एशिया के देशों में तो 1983 के बाद से उसकी बमबारी का सिलसिला रुका ही नहीं है। इससे पहले कोरिया और वियतनाम पर थोपे गये युद्धों में 40 लाख लोग मारे गये थे। युद्ध की घोषणा किये बिना अमरीकी युद्धपोत और विमान लगातार लेबनान, लीबिया, इराक, ईरान, सूडान और अफगानिस्तान पर हमले करते रहे हैं। इन हमलों में कितने निर्दोष नागरिक मारे गये इसकी न तो अमरीका को जानकारी है और न ही फिक्र। निकारागुआ, अल सल्वाडोर, क्यूबा, ग्रेनाडा, ग्वाटेमाला, पनामा जैसे देशों में अमरीका ने न जाने कितने जनसंहार कराये हैं। आज भी कोलम्बिया में युद्ध जैसी स्थिति बनी हुई है जहां अमरीका गांव-गांव तक में बमबारी करने के लिये अरबों डालर खर्च कर रहा है। पेरू में जारी जनयुद्ध को कुचलने के लिये अमरीका ने वहां हजारों ग्रीन बेरेट्स सैनिक उतारे हैं।

बेशर्म, वहशी हत्यारा

अमेरिका ने दुनिया के न जाने कितने देशों में वहां के लोकप्रिय नेताओं की हत्याएं कराई हैं और उसकी दर्जनों असफल कोशिशों का भांडा फूट चुका है।

अप्रैल 1955 में तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चाउ एन-लाई ने बांदुंग रवाना होते समय अचानक अपना कार्यक्रम बदल दिया और किसी कारणवश एअर इंडिया के विमान के बजाय दूसरा विमान पकड़ा। एअर इंडिया के विमान में रखा बम नियत समय पर फट गया, अनेक बेकसूर लोग मारे गये पर चाउ एन-लाई बच गये। सीआईए का मिशन विफल रहा, हालांकि बाद में लीपापोती करने के प्रयास में उसने दावा किया कि हांगकांग में उसके एजेंट को पहले ही इस "योजना" पर अमल करने से रोकने के आदेश दे दिये गये थे, इसलिये एअर इंडिया के विमान के विध्वंस में उसका हाथ नहीं था। पर हत्यारों का चेहरा बेनकाब हो चुका था। (देखें, फाइनल रिपोर्ट, भाग IV, पृ. 108, अमेरिका की आधिकारिक जांच समिति के पर्यवेक्षण के अंश)

आगे चलें।

क्यूबा में फिदेल कास्त्रो के नेतृत्व में जनक्रान्ति सफल होते ही अमेरिका ने उनकी हत्या का फैसला कर लिया था। सीआईए के तत्कालीन डायरेक्टर एलन डलेस ने एक आदेश पर हस्ताक्षर किये थे जिसमें लिखा था : "फिदेल कास्त्रो को ठिकाने लगाने पर पूरा ध्यान दिया जाये।... यकीन है कि कास्त्रो के दृश्यपटल से गायब हो जाने से क्यूबा की मौजूदा सरकार के पतन की प्रक्रिया बहुत तेज हो जायेगी।...." (एलेन्ड एसेशिनेशन प्लॉट्स अगेन्स्ट फारेन लीडर्स (विदेशी नेताओं को कत्ल कराने की कथित साजिशें), चर्च कमेटी, अमेरिकी संसद की रिपोर्ट, पृ. 11) खुद अमेरिकी पत्रकारों और सीआईए के भूतपूर्व कर्मियों के अनुसार अमेरिका ने कास्त्रो को खत्म करने के लिए दो दर्जन से ज्यादा कोशिशें की हैं जिनमें माफिया तक का इस्तेमाल किया गया है।

कुछ समय बाद स्वतंत्र कांगो के पहले लोकप्रिय नेता पैट्रिस लुमुम्बा को सीआईए के जारज पुत्र मोबुटु ने वहशीपन के साथ कत्ल करा दिया। इस शर्मनाक काण्ड में पर्दे के पीछे अमरीकी

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी बमबारी के शिकार देश

चीन	1945-46	कम्बोडिया	1969-70
कोरिया	1950-53	ग्वाटेमाला	1967-69
चीन	1950-53	ग्रेनाडा	1983
ग्वाटेमाला	1954	लीबिया	1986
इण्डोनेशिया	1958	अल सल्वाडोर	1980 का दशक
क्यूबा	1959-60	निकारागुआ	1980 का दशक
ग्वाटेमाला	1960	पनामा	1989
कांगो	1964	इराक	1991-01
पेरू	1965	सूडान	1998
लाओस	1964-73	अफगानिस्तान	1998
वियतनाम	1961-73	युगोस्लाविया	1999

राष्ट्रपति ड्वाइट आइजनहोवर, सीआईए के कुख्यात डायरेक्टर एलेन डलेस, ओ' डोनेल, रिचर्ड बिसेल, बिल हार्वे आदि शामिल थे।

80 के दशक में लीबिया के नेता मुअम्मर गद्दाफी का तख्ता पलटने और उनकी हत्या के कई असफल प्रयासों के बाद 14 अप्रैल 1986 को अमरीका के दर्जनों एफ 111 बमवर्षकों ने सोये हुये त्रिपोली शहर पर घुआंधार बमवर्षा की। निशाना थे गद्दाफी जो उस समय रेगिस्तान में एक तम्बू में सो रहे थे। वह तो बच गये लेकिन उनकी गोद ली हुई पन्द्रह महीने की बच्ची मारी गयी।

उपरोक्त प्रकरण अमरीकी आतंकवादियों द्वारा आयोजित अनगिनत व्यक्तिगत हत्यायों से जुड़े हैं परन्तु उन सामूहिक, व्यापक पैमाने पर किये गये नरसंहारों के बारे में क्या कहा जाये जो संयुक्त राज्य अमरीका पिछले सौ सालों से आयोजित करता आया है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण 1890 के दशक का एक घिनौना नाटक है। प्रसिद्ध अंग्रेज पत्रकार पॉल हॉक की पुस्तक "द न्यूजपेपर गेम" के अनुसार 1890 के दशक में अमरीकी पूंजीवाद इजारेदारी की मंजिल में प्रवेश कर चुका था और विदेशी मंडियों और कच्चे माल की तलाश में नये इलाकों को तलाश रहा था तो उसके अखबारों की नजर क्यूबा पर टिक गयी। अखबारमालिकों के शिरोमणि विलियम रैन्डोल्फ हर्स्ट ने क्यूबा पर आक्रमण के बहाने की तलाश के लिये अपने वरिष्ठ संवाददाता को हवाना भेजा। रेमिंगटन ने हवाना से मालिक को तार भेजा 'पूरा अमन है यहां। कोई गड़बड़ नहीं। कोई युद्ध नहीं होने जा रहा। मैं लौट रहा हूं।' हर्स्ट ने झल्लाकर रेमिंगटन को संदेश भेजा : 'वहीं रुके रहो, तुम तस्वीरें मुहैया करो, युद्ध मैं मुहैया करूंगा।'

कुछ ही समय बाद अमरीकी जलयान 'माइन' में विस्फोट हुआ और हर्स्ट के अखबार *न्यूयार्क जर्नल* को वांछित बहाना मिल गया। अमरीकी अखबारों में होड़ लग गयी देश को युद्ध के मैदान में झोंकने की। और इसके बाद 30 वर्षों तक क्यूबा ही नहीं पूरे कैरिबियन सागर क्षेत्र में अमरीकी सैनिक छा गये।

दूसरों की जमीन पर सैनिक उतारने के नये-नये नुस्खे ईजाद करने के सिलसिले की यह शुरुआत थी।

> "दुनिया के सामने हमने अपनी तस्वीर एक ऐसे गुण्डे के रूप में पेश की है जो एक बटन दबाता है और हजारों लोग मौत की नींद सो जाते हैं। हम एक मिसाइल के खर्च के अलावा कोई कीमत नहीं चुकाते. ..आने वाले वर्षों में बाकी दुनिया के साथ हमारे सम्बन्धों में यह तस्वीर हमारा पीछा करती रहेगी।"
>
> —लारेंस ईगलबर्गर,
> भूतपूर्व अमरीकी विदेश मंत्री

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सीआईए ने एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमरीका के देशों में दर्जनों तख्तापलट और हत्याकाण्ड आयोजित कराये। ईरान में राजशाही को हटाकर सत्ता में आये डाक्टर मुसद्दक की लोकप्रिय सरकार ने अमरीकी तेल कम्पनियों का राष्ट्रीकरण करना शुरू किया तो उनकी बर्बरतापूर्वक हत्या कराकर शाह की जालिम सत्ता को दुबारा बैठाया गया। 1973 में चिली में सल्वाडोर अलेन्दे की पार्टी भारी बहुमत के साथ सत्ता में आयी और जैसे ही उसने कई समाजवादी कदम उठाने शुरू किये, अमरीका ने वहां तख्तापलट करा दिया जिसमें खुद अलेन्दे लड़ते हुये मारे गये। इस साजिश में सीआईए का भरपूर साथ पेप्सी कम्पनी ने दिया जिसकी भारी पूंजी वहां लगी हुई थी। निकारागुआ में तानाशाह सोमोजा को हटाकर बनी लोकप्रिय सरकार के खिलाफ बर्बर आतंकवादी हमले जारी रखने के लिये अमरीका बरसों तक कोण्ट्रा आतंकवादियों को अरबों डालर की मदद और हथियार देता रहा।

वियतनाम में अमरीकी फौजों ने जैसे बर्बर कत्लेआम किये उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। 1961 से 1973 तक अमरीकी विमानों ने पूरे हिन्दचीन—वियतनाम, कम्पूचिया, लाओस—को बमों से पाट दिया। इस कारपेट बॉम्बिंग (बमों का कालीन बिछा देने) से शहर, खेत, पहाड़, जंगल किसी को नहीं छोड़ा गया। 30 वर्ष बाद आज भी आये दिन खेत में हल चला रहा कोई किसान या पार्क में खेल रहा कोई बच्चा इन बमों का शिकार होता रहता है।

तीसरी दुनिया के ज्यादातर देशों में अमरीका एक घृणित हमलावर के तौर पर देखा जाता है। जिससे बच्चा-बच्चा नफरत करता है। बहुत पहले अमरीकी इतिहासकार विलियम मैन्सफील्ड ने अपने देश के एक पादरी रेनविक सी केनेडी का हवाला देते हुये कहा था : "वह खंड़ा है अमरीकी आधिपत्यवादी सेना का एक नमूना सिपाही—मोटा, जरूरत से ज्यादा खाया-पिया, अलग-थलग, उदास, नजर कम, समझदारी उससे भी कम, विजेता, जिसकी एक जेब में चाकलेट और दूसरी जेब में सिगरेट का पैकट है—विजित को देने के लिये उसके पास बस यही है।"

शायद इसी कारण कोरिया युद्ध में हारकर लौटे अमरीका के "नेपोलियन बोनापार्ट" जनरल डगलस मैकार्थर्क ने 1960 के दशक के आरम्भ में तत्कालीन राष्ट्रपति जॉन एफ केनेडी से कहा था : "जो कोई भी अमरीकी सेना को एशिया में उतारना चाहता है, उसे अपने दिमाग की जांच करा लेनी चाहिए।" लेकिन ऐसी चेतावनियों को ताकत के नशे में चूर साम्राज्यवादी बार-बार नजरंदाज करते रहे हैं और बार-बार मुंहकी खाते रहे हैं। जॉर्ज बुश वैसे भी खुद अमरीकी नजरों में अर्द्ध शिक्षित हैं, वे तो इस पर ध्यान नहीं ही देंगे। राष्ट्रपति चुनाव में हुई धांधली की कालिख धोने और दुनिया को अमरीका की ताकत का लोहा मनवाने के लिये वह आतुर हैं...।

व्यक्तिगत आतंकवाद और राजकीय आतंकवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पूंजी रूपी डाइन अग्नि नृत्य के लिये अपने पात्र तैयार करती है दूसरों को मारने के लिये। और कभी-कभी वे पात्र उल्टे मार कर बैठते हैं।

(लेखक कई अखबारों से जुड़े रहे वरिष्ठ पत्रकार और लेखक हैं)

इतिहास से भयाक्रान्त भगवा गिरोह

अभिनव

संघ परिवार इतिहास से भयाक्रान्त है। अपनी राजनीतिक शाखा भाजपा की सत्ता पर पकड़ के बूते वह बदहवास होकर इस भय से पीछा छुड़ाने के लिए हरमुमकिन कोशिश में जुटा हुआ है। सभी अकादमिक संस्थाओं में अपने बौद्धिक टट्टुओं को घुसाना, स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में फेरबदल करना और समूचे सामाजिक -सांस्कृतिक ताने-बाने को हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी रंग में रंगने की कोशिश – बीते हुए कल के प्रेतों से छुटकारा पाने की कोशिशों का ही हिस्सा हैं। इन्हीं कोशिशों का अहम हिस्सा था, जब सन 2000 के बाल दिवस (14 नवम्बर) के अवसर पर मानव संसाधन विकास मंत्री मुरली मनोहर जोशी ने *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फार स्कूल एजुकेशन* जारी किया था। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए विश्वविद्यालय स्तर पर ज्योतिषशास्त्र हस्तरेखा विज्ञान एवं वैदिक गणित की शिक्षा को घुसाने की अहमकाना कोशिश जारी है। इसके साथ ही इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के साथ उद्दंड छेड़खानी भी जारी है

छापा-तिलक और भगवा पटकाधारी कथित ...तक विज्ञानी माननीय जोशी जी द्वारा पिछले बाल दिवस पर एन.सी.ई.आर.टी. (नेशनल काउंसिल फार एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग) की ओर से ऊपर वर्णित हास्यास्पद दस्तावेज जारी किया था। इस दस्तावेज में कहा तो यहां तक गया है कि इस स्तर पर एक विषय के तौर पर इतिहास को ही हटा दिया जाएगा और इसे सामाजिक विज्ञान के वृहत्तर निकाय के एक भाग के तौर पर पढ़ाया जाएगा। इस निर्णय के पीछे कारण यह बताया गया है कि पाठ्यक्रम का बोझ थोड़ा कम करने और इसे प्रभावी और प्रासंगिक बनाने के लिए ऐसा किया गया। लेकिन अफसोस की बात यह है कि जिस "महान" दस्तावेज में ये "महान" सुझाव दिए गए हैं उसकी संघी बौद्धिक टट्टुओं को छोड़कर विभिन्न मान्य बुद्धिजीवियों ने घटिया और चवन्नीछाप अकादमिक सामग्री के लिए खिल्ली उड़ायी है।

दरअसल यह दस्तावेज निरन्तर जारी उन्हीं घृणित प्रयासों में से एक है जो भाजपा नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार 1999 से लगातार कर रही है। इस दस्तावेज के आने से पहले मानव मूल्य की धार्मिकता से जोड़ने के लिए एन;सी.ई.आर.टी का प्रकाशन 'द जर्नल आफ वैल्यू एजुकेशन' को तीखी आलोचना का शिकार हुआ था। इसमें छपे उन साम्प्रदायिक वाक्यों के लिए शिक्षा सचिव एम.के. काव को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग से माफी भी मांगनी पड़ी थी, जिसमें उन्होंने अल्पसंख्यकों के खिलाफ आपत्तिजनक बातें कही थीं। उसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) द्वारा पण्डिताई सिखाने वाले कोर्स, जैसे वैदिक ज्योतिषशास्त्र और हस्तरेखा विज्ञान (palimistry) को अनुदान देने की भी सर्वत्र निन्दा हुई। इन्हीं संघी साजिशों की श्रृंखला में अगली कड़ी के रूप में ही इस प्रयास को भी देखा जा सकता है। अगले अकादमिक सत्र से इतिहास के नये भगवा पाठ्यक्रम लागू किये जाने की संभावना है। जो पाठ्य-पुस्तकें हटाई जानी हैं उनके लेखकों में रामशरण शर्मा, रोमिला थापर, विपन चन्द्रा, सतीश चन्द्रा जैसे प्रसिद्ध और जाने-माने विद्वान हैं।

इतिहास से जान छुड़ाने के लिए उठाए गए कदमों को सही ठहराने के लिए एन.सी.ई. आर.टी. में बैठे हुए संघ के प्रति निष्ठावान अधिकारीगण *'नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फार स्कूल एजुकेशन'* को एक पवित्र ग्रंथ के रूप में उद्धृत करते हैं। आर.के. दीक्षित को, जो करिकुलम ग्रुप के संयोजक और सामाजिक विज्ञान और मानविकी के विभागाध्यक्ष भी हैं, वितिहासीकरण के लिए उठाए गए कदमों पर हो रहे विरोधों में षडयंत्र नज़र आ रहा है। उनके अनुसार उनके आलोचक इतिहास पर ज्यादा जोर दे रहे हैं। वे कहते हैं कि पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकों में किए जा रहे बदलाव *'नेशनल करिकुलम'* के गाइडलाइन्स के आधार पर किए जा रहे हैं। और *'नेशनल करिकुलम'* किए जा रहे बदलावों को इस तरह सही ठहराने का प्रयत्न करता है: **"सामाजिक विज्ञान की शिक्षा को अर्थपूर्ण, प्रासंगिक और प्रभावी बनाने के लिए समकालीन विश्व के सरोकारों और मुद्दों को सबसे आगे रखने की आवश्यकता है। इस रूप में इतिहास के परिमाण को काफी कम किया जा सकता है।"** इस वाक्य से इस दस्तावेज के लेखक की टकसाली समझ नंगी हो जाती है। इतिहास का अर्थ भूत का बयान मात्र नहीं है। इतिहास हमें किसी भी काल विशेष की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक स्थिति के उदय की भौतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में, उनके स्वरूप के बारे में बताता है। वर्तमान के आधार पर भविष्य का खाका और उसमें निहित सम्भावनाओं के बारे में भी बताता है। लेकिन इतिहास की समझ केसरिया दिमाग की क्षमता से बाहर मालूम पड़ती है। साथ ही यह बात भी समझ में नहीं आती कि भगवा गिरोह को इतिहास के परिमाण से ही खुजली क्यों होती है?

दीक्षित महोदय तो यह भी कहते हैं कि हर छात्र को विशेषज्ञ बनने की क्या आवश्यकता है। दीक्षित महोदय आगे हमें बताते हैं: *"उन्हें एक स्वस्थ समाज का सफल, प्रतियोगी नागरिक बनना होगा ..."* दीक्षित जी के सपनों का भारत आज का अमेरिका और बीते कल का जर्मनी मालूम पड़ता है। मुक्त प्रतियोगिता के पक्षधर दीक्षित जी समान अवसर की नहीं बल्कि 'वैल्यू एजुकेशन' की बात करते हैं। एक छोटे से वर्ग को सूचना तकनीक आधारित शिक्षा देने की बात की जाती है तो दूसरे विशाल वर्ग को आज्ञाकारी औजार बनाने के लिए तकनीकी शिक्षा देने और उनके विद्रोही मन को शांत करने और बागी दिल को आज्ञाकारी बनाने के लिए योग सिखाने की बात की जाती है। इस असमान शिक्षा के बाद

मुक्त प्रतियोगी बनने की सलाह दी जाती है। उनका मानना है कि इतिहास नए समाज की नयी जरूरतों को पूरा नहीं कर रहा। दीक्षित महोदय के अनुसार पुरानी इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में कुछ अल्पसंख्यक समुदायों के बारे में आपत्तिजनक वाक्य हैं और बहुसंख्यक समुदाय के भी कुछ लोगों ने इन पुस्तकों की अन्तर्वस्तु पर आपत्ति की है। यह बहुसंख्यक समुदाय कौन-सा है और उनकी भावनाओं का ठेका किन लोगों ने ले रखा है यह बताने की ज़रूरत नहीं है।

इतिहास के इस विकृतिकरण अभियान के तहत एन.सी.ई.आर.टी. कमेटियों से कुछ इतिहासकारों को बाहर कर दिया गया है। तर्क यह दिया गया है कि कुछ नए चेहरों को लाया जाएगा। लेकिन कारण नयापन मात्र नहीं है। एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक जे.एस.राजपूत के आशीर्वाद के साथ बनी एक्सपर्ट कमेटी में शामिल किए गए चेहरे ज्ञात रूप में हाफ पैण्ट, लाठी, काली टोपी वाले सिपाही हैं। इनमें मुख्य हैं एस.पी.गुप्ता, के.एस.लाल, लोकेश चंद्रा, और जी.सी.पाण्डे। इन नामों को तो शायद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दफ्तर के लोग भी न जानते हों लेकिन अब यह केसरिया ब्रिगेड के सिपाही ही तय करेंगे कि हम क्या पढ़ें और क्या न पढ़ें। दीक्षित महोदय का मानना है कि वह इतिहास में विवादास्पद मुद्दे पर कुछ नहीं कहेंगे। जैसे वह यह नहीं कहेंगे कि आर्य मध्य एशिया से आए थे और उन्होंने यहां के मूल निवासियों को भगा दिया था। इस तरह संघ के "बुद्धिजीवी" तथ्यों के साथ बलात्कार की योजना बना चुके हैं। दीक्षित की एक अन्य साम्प्रदायिक विद्वेष से भरे कथन पर गौर करें: *"जो भी कुतुब मीनार सैर करने जाता है वह इसके बारे में जानने के लिए उत्सुक होता है। लेकिन कुतुब मीनार के ही दूसरे ओर कुत्वत उल इस्लाम मस्जिद है। उसके बारे में एक प्रश्न है। आप पढ़ते हैं कि यह मस्जिद 37 हिन्दू और जैन मंदिरों के मलबे पर बनी थी। यह इतिहास निर्विवादित है। मुझे नहीं लगता कि हमें इसकी उपेक्षा करनी चाहिए।"* यह बताने के लिए दीक्षित के दिमाग में बहुत खलबली मची हुई है, इससे राष्ट्र विभाजित नहीं होगा लेकिन यह बताने से कि आर्य मूलत: भारतीय प्रायद्वीप के नहीं थे, राष्ट्र विभाजित हो जाएगा! दीक्षित के पहले

(शेष पृष्ठ 34 पर)

प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. आर.एस.शर्मा की पाठ्य-पुस्तक के साथ छेड़छाड़: भगवा ब्रिगेड का नया कारनामा

भाजपा के सत्तासीन होने के बाद से लगातार प्रसिद्ध और माने हुए इतिहासकारों की पुस्तकों को या तो वापस लिया जा रहा है या उनके साथ बदसुलूकी की जा रही है। नवीनतम उदाहरण है प्राचीन और मध्यकालीन भारत के श्रेष्ठतम इतिहासकारों में से एक प्रो. रामशरण शर्मा द्वारा लिखित कक्षा ग्यारह की पाठ्य-पुस्तक के साथ बदसुलूकी। इससे पहले **पान्चजन्य** के नियमित लेखक अतुल रावत को इतिहास का पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए सलाहकार नियुक्त किया गया था।

इस बदसुलूकी की वजह यह बतायी गयी कि **प्राचीन भारत** नामक ग्यारहवी कक्षा की पुस्तक में प्रो. शर्मा ने तीर्थंकरों की एतिहासिकता पर संदेह व्यक्त किया है जिससे जैन सम्प्रदाय की भावनाओं को "ठेस" पहुंची है। यह पुस्तक पहली बार 1977 में छपी थी, इसके बाद 1980 में इसका संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ। एक नया संस्करण 1990 में छपा। तबसे कई बार इसका पुन: मुद्रण हुआ। इसके बाद भी भगवा ब्रिगेड के समर्पित सिपाहियों, एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक जे. एस.राजपूत और सामाजिक विज्ञान और मानविकी के नए विभागाध्यक्ष आर.के. दीक्षित संतुष्ट नहीं हैं। उन्होंने इस पुस्तक के दसवें अध्याय, जो जैन धर्म और बौद्ध धर्म पर केन्द्रित है, आपत्ति की है। इसमें प्रो. शर्मा ने अनुत्तरित तर्कों सहित अपने संदेह को जायज साबित किया है। प्रो. शर्मा ने लिखा है कि अगर महावीर जैन को चौबीसवां तीर्थंकर मान लिया जाए तो जैन धर्म की उत्पत्ति का समय नौवीं शताब्दी ईसा पूर्व में कहीं माना जाएगा लेकिन उस समय के सभी धार्मिक गुरु गंगा के मैदानों के मध्यवर्ती इलाके में पैदा हुए थे और यह इलाका छठीं शताब्दी ईसा पूर्व से पहले बिल्कुल निर्जन था। प्रो. शर्मा का मानना है कि तीर्थंकरों का मिथ शायद इसलिए खड़ा किया गया कि जैन धर्म की प्राचीनता बढ़ जाए। कुछ लोगों को पुस्तक के इस हिस्से पर कथित आपत्ति के आधार पर पहले इसमें संशोधन प्रस्तावित किया गया। इस बदले हुए संस्करण मे बात सारी वही रखी गयी लेकिन सभी आपत्तिजनक वाक्यों के पहले यह वाक्यांश चस्पां कर दिया गया: "जैन धर्म के अनुयायियों के अनुसार"। इसमें तथ्यों की ऐतिहासिकता बरकरार थी।

लेकिन यह तो था प्रस्तावित संशोधन। फरवरी, 2001 में जो नया संस्करण आया उसमें भगवा ब्रिगेड ने अपनी कारस्तानी कर ही दी। इसमें संशोधन का वह हिस्सा, जिसमें पुरातात्विक प्रमाणों के साथ महावीर के जैन धर्म के संस्थापक होने की संभावनाओं पर जोर दिया गया है, मिटा दिया गया है। इसी प्रकार किताब का एक और हिस्सा संशोधित किया गया। भुवनेश्वर में सामाजिक विज्ञान और मानविकी विभाग में रीडर प्रीतीश आचार्य ने इन कारनामों का विरोध किया और जब उन्होंने और संशोधन करने से इंकार कर दिया तो उनका तबादला कर दिया गया।

इस शुद्धीकरण मुहिम के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। मध्यकालीन भारत पर सातवीं कक्षा की प्रो. रोमिला थापर की पाठ्य पुस्तक और इसी काल पर प्रो. सतीश चन्द्रा द्वारा लिखी गई पाठ्य पुस्तकों पर भी आपत्ति दर्ज करके वही सुलूक करने की तैयारी कर ली गई है।

● शिशिर

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव 2001

भ्रष्ट चुनावी छात्र राजनीति के खिलाफ आम छात्रों का गुस्सा और विकल्प की बेचैनी

किसी मजबूत क्रान्तिकारी विकल्प के अभाव में पिछले सात सितम्बर को सम्पन्न दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव 2001 में अध्यक्ष, सचिव और संयुक्त सचिव के पदों पर कांग्रेस से जुड़े छात्र संगठन एन.एस.यू.आई. और उपाध्यक्ष के पद पर संघ-भाजपा के छात्र संगठन के प्रत्याशी ने कब्जा जमा लिया। लेकिन विगत कई वर्षों की भाँति एक बार फिर आम छात्रों की भारी आबादी ने साफ तौर पर प्रकट कर दिया कि वे मौजूदा भ्रष्ट चुनावी छात्र राजनीति से बुरी तरह ऊब चुके हैं। इसके प्रति उनके मन में गुस्सा है और विकल्प के लिए बेचैनी भी।

पिछले चुनावों की तरह इस बार भी 'मनी पावर', 'मसल पावर' और 'फेस पावर' (ग्लैमर प्रदर्शन) के बूते चुनावी पार्टियों के पिछलग्गू छात्र संगठनों ने चुनाव लड़ा और हार-जीत का यह घिनौना खेल सम्पन्न हुआ। लेकिन उम्मीदवारों की जी-तोड़ कोशिशों के बावजूद कुल 35 फीसदी छात्रों ने ही वोट डाले। साफ है कि मौजूदा छात्र संघ को आम छात्रों की बहुसंख्या का मत और विश्वास ही नहीं प्राप्त है। बिल्कुल वही स्थिति जैसी आजकल लोकसभा-विधानसभा चुनावों में होती है। लेकिन इसके बावजूद ये छात्रों के रहनुमा होने का दम भरेंगे और छात्र संघ में बैठकर लम्बे संघर्षों के बाद हासिल छात्रों की इस प्रतिनिधि संस्था का अपने निहित स्वार्थों के लिए जमकर इस्तेमाल करेंगे।

दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सत्तर कालेजों के अपने छात्र संघ चुनावों में भी 'डूसू' (दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ का संक्षिप्त नाम) चुनावों की तर्ज पर ही धनबल-शस्त्रबल और ग्लैमर का फूहड़ और नंगा प्रदर्शन हुआ। जाकिर हुसैन कालेज के एक प्रत्याशी की तो हत्या तक प्रतिद्वंद्वियों ने कर दी। श्यामलाल कालेज में डी.एस.यू. ने एक पद पर जीत हासिल की, लेकिन आम तौर पर कालेजों के चुनावों का नज़ारा भी वही था, जो 'डूसू' चुनावों का था।

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनावों में जनतांत्रिक प्रक्रिया की 'ट्रेनिंग' के नाम पर एम.पी.-एम.एल.ए. बनने की इस अश्लील ट्रेनिंग के बीच आम छात्रों की एक पहलकदमी भी बेहद महत्वपूर्ण रूप में उभरकर सामने आयी है, जिससे भविष्य के कुछ अच्छे संकेत मिलते हैं। दिशा छात्र संगठन नामक एक क्रान्तिकारी छात्र संगठन ने चुनाव में आम छात्रों के बीच एक व्यापक एवं सघन भ्रष्ट छात्र राजनीति विरोधी अभियान चलाया। व्यापक जनसम्पर्क, क्लासरूम, मीटिंगों, व्यापक पोस्टरिंग और पर्चा वितरण के जरिये आम छात्रों को एक क्रान्तिकारी विकल्प के लिए ललकारा। इस अभियान के जरिये आम छात्रों से यह आह्वान किया गया कि वे छात्र संघ के उम्मीदवारों से सवाल पूछें कि अपने मतदाताओं के भविष्य और कैम्पस के बाहर भटकते करोड़ों बेरोजगार नौजवानों के लिए संघर्ष की उनके पास क्या योजना है। इसी तरह के कई अन्य सवाल पूछने और इस स्थिति को बदलने के लिए आम छात्रों को उद्वेलित किया गया।

इस अभियान के तहत जारी पर्चे में यह विश्वास व्यक्त किया गया कि दिल्ली विश्वविद्यालय और समूचे देश की छात्र राजनीति की मौजूदा स्थिति बदलकर रहेगी। क्योंकि 'हम एक ज़िन्दा कौम हैं और ज़िन्दा कौम के बहादुर युवा ज़िन्दा सवालों पर सोचते हैं। इसलिए कि 'अभी इस देश के युवाओं का विवेक मरा नहीं है, वीरता ज़िन्दा है, इंसाफ़पसन्दगी ज़िन्दा है!' इसलिए कि 'भारत के युवाओं के यौवन का पराक्रम ज़िन्दा है।'

'दिशा' के इस अभियान को आम छात्रों का व्यापक समर्थन मिला क्योंकि जो सवाल उठाये गये थे वे आम छात्रों के मन में पहले से ही उमड़-घुमड़ रहे थे और वे बेचैनी के साथ विकल्प भी तलाश रहे हैं। जब सवाल सही ढंग से उठा दिये जाते हैं तो जवाब तक पहुंचने में देर नहीं लगती। संकेत मिल चुका है कि आने वाले समय में आम छात्र मौजूदा पतित छात्र राजनीति का मुंहतोड़ जवाब देकर रहेंगे।

यह सही है कि छात्र संघ चुनाव में वोट न देने वाले बहुत से छात्र ऐसे होंगे जो इस पूरे तमाशे से ऊबे और चिढ़े हुए हैं और छात्र संघ को, छात्र राजनीति को और पूरी राजनीति को ही गन्दी चीज़ मानने लगे हैं। लेकिन इन्हें भी देर-सवेर भगतसिंह की कही यह बात समझनी ही होगी कि अलग-थलग रहकर विद्यार्थी न तो खुद को बचा पायेंगे और न देश को – उन्हें पढ़ाई के साथ-साथ राजनीति का भी ज्ञान हासिल करना होगा और वक्त आने पर मैदान में कूदना होगा। इसके साथ ही यह बात भी उन्हें समझनी होगी कि जब अच्छे, स्वाभिमानी और संवेदनशील युवा मैदान से हटे रहेंगे तो वह मैदान अपराधियों, चुनावी पार्टियों के टुटपुंजियों और धनिकपुत्रों की धमाचौकड़ी के लिए खाली ही रहेगा।

दिल्ली विश्वविद्यालय ही नहीं तमाम कैम्पसों के छात्रों-युवाओं को यह सोचना ही होगा कि आज बेहद अहम सवाल हमारे सामने खड़े हैं। अन्धाधुन्ध छंटनी, तालाबन्दी का सिलसिला जारी है, रोजगार लगातार सिमटता-सिकुड़ता जा रहा है, दमन-उत्पीड़न-भ्रष्टाचार से देश कराह रहा है, देशी और विदेशी गिद्ध चारों ओर से इसे नोंच-चींथ रहे हैं। इस माहौल में आम जनता के बहादुर सपूतों के कन्धों पर वक्त ने जो अहम जिम्मेदारियां डाल दी है, उनके मुकाबले यह तो अदना-सा कार्यभार है कि वे छात्र संघ की राजनीति की कमान अपने हाथ में लें और उसे संघर्ष का जुझारू मंच बनाएं। कैम्पस के जनतांत्रीकरण और रोजगार और समान शिक्षा के अधिकार की लड़ाई तभी मजबूत हो सकेगी।

● प्रवीण

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव 2001 के अवसर पर

दिशा छात्र संगठन द्वारा आम छात्रों के बीच वितरित पर्चा

छात्र संघ चुनाव के उम्मीदवारों से आखिर क्यों नहीं पूछते आप ये सवाल

● छात्र राजनीति को धनबल-शस्त्रबल से मुक्त करने का आपके पास क्या कार्यक्रम है?

● कैम्पसों और कालेजों को सतरंगे पोस्टरों-पर्चों से पाट देने, हजारों गैलन पेट्रोल फूंकने और हजारों लीटर बियर और व्हिस्की बहाने के लिये आपको फाइनेंसर कहां से मिलते हैं? जीतने के बाद आप सूद सहित उनका कर्ज उतारेंगे या हम छात्र-छात्राओं की बात सुनेंगे?

● आपकी जवाबदेही टिकट देने वाले अपनी पार्टी के नेताओं के प्रति है या वोट देने वाले छात्रों के प्रति?

● पिछले दस साल में छात्रसंघ बारी-बारी से कभी इस, कभी उस पार्टी के हाथ में रहा। और हर साल फीसें बढ़ती रहीं – छात्रों के प्रतिनिधि खामोश रहे। है कोई जवाब?

● यहां से निकलने के बाद चुनावी राजनीति के कारोबार में आपका भविष्य तो सुरक्षित है। पर अपने मतदाताओं के भविष्य के बारे में आपने कभी सोचा है? कैम्पस के बाहर भटकते करोड़ों बेरोजगार नौजवानों के लिये संघर्ष की कोई योजना है आपके पास?

● आप छात्र राजनीति में एम.पी.-एम.एल.ए. बनने की ट्रेनिंग लेने आये हैं या देश की असली आज़ादी की राह का क्रान्तिकारी योद्धा बनने?

● देश को नोच-खसोट रहे देशी-विदेशी लुटेरों के खिलाफ क्या आप छात्रों की आवाज़ बुलन्द करेंगे? क्या आपकी पार्टी आपको इसकी इजाजत देगी?

● जाति, धर्म, क्षेत्र के नाम पर वोट बटोरने के बाद आप छात्रों को एकजुट करने का दावा क्यों और कैसे करते हैं?

● कैम्पस में बढ़ती गुंडागर्दी, छेड़खानी, छात्राओं के उत्पीड़न को क्या आप रोकेंगे? क्या अपनी गुंडावाहिनी के दम पर?

● क्या आप छात्रसंघ के आय-व्यय का वास्तविक ब्यौरा सार्वजनिक करेंगे? क्या आप पिछले दस साल की आडिटिंग छात्रों से करायेंगे?

दिशा का संकल्प
खड़ा करेंगे एक नया विकल्प!
दिशा का रास्ता
परिवर्तनकामी छात्रों का रास्ता!

दिशा का नारा–भविष्य हमारा!

छात्रों-नौजवानों के लिए जनरल नालेज के कुछ जरूरी सबक

छात्रसंघ क्या है?
बेहतर शिक्षा, बेहतर भविष्य के अधिकार के लिए संघर्ष का मंच।

और आज का छात्रसंघ?
एम.पी.-एम.एल.ए. बनने का ट्रेनिंग सेंटर!
अपराध और राजनीति का संगम कराने की ट्रेनिंग सेंटर!

छात्रसंघ चुनाव कैसे जीता जाता है?
धन से, बल से, छल से! फैशन से, ग्लैमर से!
सूरत से, मूरत से! जाति से, क्षेत्र से, धर्म से!
गुंडों से, मुस्टंडों से, पंडों से!
मुर्गी के अंडों से, बोतल से, डंडों से!
भ्रष्ट नेताओं के, मंत्रियों के आशीर्वाद से!
ठेकेदारों-मठाधीशों के घात-प्रतिघात से!

छात्रसंघ क्या करता है?
फैशन शो कराता है! पैसे उड़ाता है!
पोस्टर छपवाता है! और क्या करता है... पता नहीं!

छात्रसंघ क्या नहीं करता है?
फीस बढ़ने पर, सीट घटने पर
अधिकार छिनने पर, दमन होने पर
निरर्थक शिक्षा पर, भविष्य के अंधेरे पर
कुछ नहीं करता है!

छात्र नेता चुनाव में लाखों का इनवेस्टमेंट क्यों करते हैं?
साल भर में सूद-ब्याज सहित वापसी की पक्की गारंटी!
संसद-विधानसभा के अखाड़े में उतरने की मुफ्त ट्रेनिंग!
ठेके, लाइसेंस, धनवसूली का बोनस!
विशेष इनामी स्कीम – सभी वारंटों-मुकदमों से पूरी आज़ादी!

क्या ये ऐसे ही चलता रहेगा?
नहीं, नहीं, नहीं! कतई नहीं!!

क्यों?
इसलिए कि –अब पानी नाक के ऊपर जा चुका है!
इसलिए कि –हम एक ज़िन्दा कौम हैं और ज़िन्दा कौम के बहादुर युवा ज़िन्दा सवालों पर सोचते हैं!
इसलिए कि –अभी इस देश के युवाओं का विवेक मरा नहीं है, वीरता ज़िन्दा है, इंसाफपसंदगी ज़िन्दा है!
इसलिए कि –भारत के युवाओं के यौवन का पराक्रम ज़िन्दा है!

■ उदारीकरण कुचक्र

विकास का ढपोरशंखी राग खत्म होती नौकरियां तबाह होता छात्रों-नौजवानों का भविष्य

प्रदीप

एक दशक पूर्व जब नरसिंह राव-मनमोहन सिंह की कांग्रेसी सरकार ने नयी आर्थिक नीतियां की घोषणा की थी तो सब्ज़बाग कुछ यूं दिखाये थे गोया इन नीतियों के अमल की देर है, बस दुख के दिन बीते ही समझो। चारों ओर समृद्धि की फसल लहलहायेगी। देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से गले मिलने भर की देर है, खुशियों का सागर हिलोरें लेने लगेगा।

लेकिन अब जबकि केन्द्र में कांग्रेस, संयुक्त मोर्चा से होते हुए स्वदेशी का पताका फहराने वाली भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन तक "उदारीकरण", निजीकरण ने एक दशक का सफर पूरा कर लिया है, आज विकास का सब्ज़बाग तबाही के अनन्त रेगिस्तान के रूप में हमारे सामने पसर चुका है। विकास के ढपोरशंखी राग की पोल खुल चुकी। लोकलुभावन नारों से कुछ समय तक दिग्भ्रमित हो गये मध्यवर्ग की आंखें भी खुलती जा रही हैं।

पहले सब्ज़बाग अब बेहया नसीहतें मक्कार जुमलेबाजियां

दस वर्षों में "उदारीकरण", निजीकरण की सच्चाई इतने नंगे रूप में सामने आयी है कि सरकारी नुमाइन्दे अब सब्ज़बाग दिखाने के काबिल ही नहीं रहे। सत्ता सम्हालते समय जो प्रधानमंत्री हर साल एक करोड़ रोजगार देने का वायदा कर रहा था, तीन साल बाद वह बेहया नसीहतें देने पर उतर आया है। पिछले दिनों अटल बिहारी वाजपेयी ने फरमाया कि *"वर्ष 2004 तक सरकारी कर्मचारियों की संख्या में दस प्रतिशत कटौती की जायेगी। .. नौजवान सरकारी नौकरियों की उम्मीद छोड़ दें। रोजगार के लिए वे या तो निजी क्षेत्र का दरवाजा खटखटायें या खुद का अपना उद्यम शुरू करें"* जाहिर है कि प्रधानमंत्री महोदय अपने वायदे से साफ मुकर चुके हैं।

इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री महोदय एक तरफ नौजवानों को ये नसीहतें दे रहें हैं, दूसरी ओर "सुधारों" के दूसरे चरण की कमान अपने हाथ में लेकर छंटनी-तालाबन्दी के लिए पूंजीपतियों के रास्ते साफ करते हुए मक्कारी भरी जुमलेबाजियां कर रहे हैं। पिछले दिनों राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने फरमाया कि श्रम सुधारों से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। यानी, जब पूंजीपतियों को मनचाहे ढंग से कारखाने बन्द करने, और मर्जी के मुताबिक मज़दूरों को काम पर रखने या निकाल बाहर करने का अधिकार मिल जायेगा तो इससे रोजगार के अवसर बढ़ेंगे।

बहरहाल, प्रधानमंत्री तो बातों को घुमाने की कला में माहिर हैं। यूं भी बातों को घुमाने की कला तो हमारे लोकतंत्र में एक खूबी मानी जाती है। उन्हें जमीनी सच्चाइयों से या बेरोजगार लोगों की पीड़ा से क्या लेना-देना। सरकार का ही आर्थिक सर्वेक्षण-2001 कहता है कि 1997 के मुकाबले 2000-2001 तक 1,44000 सरकारी नौकरियां और निजी क्षेत्र की 50,000 नौकरियां खत्म की जा चुकी हैं, तो भला नौजवान निजी क्षेत्र में रोजगार के लिए दरवाजा खटखटाने कहां जायें। रही बात खुद के उद्यम की तो "उदारीकरण", निजीकरण की इन्हीं नीतियों की बदौलत देश में 3,06,221 छोटे उद्योगों पर ताले लटक चुके हैं। प्रधानमंत्री की नसीहत मानकर अगर कोई नौजवान कर्ज-वर्ज का जुगाड़ कर कोई छोटा निजी उद्यम खोले भी तो उसे देशी-विदेशी दैत्याकार कम्पनियां नहीं निगल जायेंगी, इसकी क्या गारंटी है। वह भी तब जब छोटे उद्योगों के लिए आरक्षित क्षेत्र को बड़े उद्योगों के लिए खुला कर दिया गया है।

दूसरे, जिस सूचना प्रौद्योगिकी और उसमें रोजगार की सम्भावनाओं का डंका बजाया जा रहा है, क्या उसका सारा तामझाम सिर्फ महानगरों तक ही सिमटा हुआ नहीं है? क्या गांवों और शहरों के ग़रीब व निम्न मध्यम और औसत मध्यम वर्ग के नौजवानों तक उस सूचना-प्रौद्योगिकी के इस तंत्र की पहुंच हो पायेगी, जिसके प्रशिक्षण में ही हज़ारों रुपये गलाने पड़ते हैं। वैसे आजकल सूचना प्रौद्योगिकी का गुब्बारा भी पिचका हुआ है। इस क्षेत्र में छायी विश्वव्यापी मंदी छंटने के आसार दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहे हैं। ऐसे में प्रधानमंत्री

तालिका – एक: केन्द्र व राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों में रोजगार वृद्धि दर

वर्ष	केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध रोजगार %	राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध रोजगार %	स्थानीय निकायों द्वारा उपलब्ध रोजगार %
1981-91	0.7	2.3	1.3
1991-98	–0.6	0.6	–0.3

स्रोत: श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

की नसीहतें एक अश्लील गाली लगती है।

सरकारी आंकड़ों से भी झलकता बेरोजगारी का अनन्त रेगिस्तान

पिछले दस वर्षों में बेरोजगारी किस हद तक बढ़ी है इसे जानने के लिए दर-बदर भटकती युवा पीढ़ी की आंखों को पढ़ने की जरूरत है। लेकिन ठंडे-बेजान सरकारी आंकड़े भी सच्चाई का बयान करने से बच नहीं पाते।

1981 में कुल रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या लगभग 185 लाख थी जो 1991 तक किसी तरह190.6 लाख तक पहुंची। यानी, 1981-91 के दशक में सरकारी क्षेत्र में रोजगार की औसत वार्षिक वृद्धि दर मामूली ही सही पर 2.1 प्रतिशत थी। लेकिन, नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद सरकारी रोजगार 1998 में सिर्फ 194.2 लाख रह गया। इस प्रकार इस दौरान सरकारी क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर सिर्फ 0.2 प्रतिशत रह गयी।

अब केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय निकायों की नौकरियों में अलग-अलग रोजगार की स्थितियों पर नज़र दौड़ाएं।

कुल सरकारी रोजगार में केन्द्र सरकार का हिस्सा जो 1981 में 20.6 प्रतिशत था वह कम होकर 1991 में 17.9 प्रतिशत रह गया और फिर 1998 में सिर्फ 16.8 प्रतिशत रह गया। अगर केन्द्र सरकार के रोजगार में "सुधारों" के पहले और बाद की स्थिति पर नज़र दौड़ाएं तो साफ दिखेगा कि "सुधारों" के बाद के दौर में वृद्धि दर ऋणात्मक पहुंच गयी है (देखें - तालिका-एक)। 1981-91 के दौरान केन्द्र सरकार के रोजगारों में जो वृद्धि दर 0.7 थी वह 1991-98 के दौरान घटकर 0.6 रह गयी।

राज्य सरकारों के रोजगार में भी वृद्धि दर की यही रुझान है। इनके द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले रोजगार की वृद्धि दर 1981-91 के दौरान 2.3 प्रतिशत थी जो "सुधारों" के दौर में घटकर औसतन सिर्फ 0.6 प्रतिशत रह गयी। अर्द्धसरकारी संस्थानों में उपलब्ध रोजगार की संख्या 1981 में 45.8 लाख थी। 1991 के बाद इनकी वृद्धि दर में भी कमी आयी और 1998 तक पहुंचने पर यह संख्या सिर्फ 64.8 लाख तक पहुंची यानी सिर्फ 0.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर।

स्थानीय निकायों में भी रोजगार वृद्धि दर "सुधारों" के दौर में ऋणात्मक पहुंच गयी। इनमें कुल रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या 1981 में 20.4 लाख थी जो बढ़कर 1991 में 23.1 लाख तक पहुंची थी, परन्तु "सुधारों" के बाद यह गिरकर 22.5 लाख पर पहुंच गयी। साफ है कि जो रोजगार वृद्धि दर 1981-91 के दारान 1.3 प्रतिशत थी वह 1991-98 के दौरान नकारात्मक होकर 0.3 प्रतिशत पर लुढ़क गयी। (देखें तालिका- एक व दो)।

तालिका – दो: सरकारी अर्द्धसरकारी क्षेत्रों में रोजगार उपलब्धता (लाख में)

वर्ष	केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध	राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध	अर्द्धसरकारी क्षेत्रों द्वारा उपलब्ध	स्थानीय निकायों में द्वारा उपलब्ध
1991	34.10	71.12	62.22	23.13
1995	33.95	73.55	65.20	21.97
1998	32.53	74.58	64.61	22.46

स्रोत: श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

अगर संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र के आधार पर रोजगार की स्थिति का आकलन करें तो भी यही तस्वीर नज़र आती है (देखें – तालिका-तीन)। "सुधारों" के पहले संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर 1.73 प्रतिशत थी जो "सुधारों" के लागू होने के बाद 0.6 प्रतिशत रह गयी। यही हाल असंगठित क्षेत्र का भी है। पहले यह 2.41 प्रतिशत थी बाद में घटकर 1.1 प्रतिशत रह गयी। यहीं प्रधानमंत्री के इस सफेद झूठ की पोलपट्टी भी खुल जाती है कि "सुधारों" से असंगठित क्षेत्र में रोजगार बढ़ेंगे।

सरकारी खर्चों में कटौती के नाम पर वर्ष 2004 तक सरकारी नौकरियों में जो दस प्रतिशत कटौती की बात की जा रही है, उसकी असलियत भी गौर करने लायक है। सरकारी अर्थशास्त्रियों का ही कहना है कि हर साल दो प्रतिशत की दर से सरकारी कर्मचारियों की छंटनी से हर वर्ष सरकारी व्यय में सिर्फ हर साल सिर्फ 0.8 प्रतिशत ही कमी हो पायेगी। इस दर से पांच वर्षों में सरकारी व्यय में कुल सिर्फ 0.4 प्रतिशत की ही कमी हो पायेगी जो ऊंट के मुंह में जीरे के समान भी नहीं है। जाहिर है यह कटौती सरकार सिर्फ इसलिए कर रही है जिससे भारी-भरकम नौकरशाही और अन्य अनुत्पादक सरकारी खर्चों के लिए जितना भी सम्भव हो रकम बचायी जा सके।

जिनका भविष्य तबाह हो रहा है वही इस व्यवस्था को तबाह करेंगे

सरकारी आंकड़े खुद यह गवाही दे रहे हैं कि हालात कितने विस्फोटक होते जा रहे हैं। आज स्नातक स्तर पर पढ़े-लिखे दस छात्रों में से सिर्फ एक को रोजगार मिल पा रहा है। देश की कुल श्रमशक्ति के एक तिहाई से भी ज्यादा आबादी खाली हाथ बैठी। अगर अर्द्धबेरोजगारी या छिपी बेरोजगारी भी इसमें जोड़ दें तो देश की लगभग आधी आबादी खाली हाथ बैठी है। लेकिन, यह आबादी क्या सिर्फ हाथ पर हाथ धरे अपनी तबाही-बर्बादी का चुपचाप तमाशा देखती रहेगी? नहीं, कतई नहीं।

शासक वर्ग तो उसी राह पर चलते रहेंगे, जिस पर वे चलते आ रहे हैं। वे पीछे नहीं हटेंगे। लेकिन, करोड़ों-करोड़ लोग वहीं नहीं बैठे रहेंगे जहां वे हैं। "सुधारों" के थपेड़े उन्हें तेजी से यह सिखाते जा रहे हैं कि अगर भविष्य के अंधेरे से उन्हें निजात पानी है तो उन्हें उठ खड़े होना होगा। मुनाफे की लूट पर टिकी जो व्यवस्था उनके भविष्य का रास्ता रोके खड़ी है, उसका चेहरा धीरे-धीरे उन्हें साफ नज़र आता जा रहा है। इसलिए, उनकी बेचैनी भी बढ़ती जा रही है, गुस्सा भी बेकाबू होता जा रहा है। भविष्य के प्रति गहन निराशा की जो मन:स्थिति कहीं-कहीं आत्मघाती कदमों

तालिका – तीन: संगठित व असंगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर (प्रतिशत में)

वर्ष	संगठित क्षेत्र	संगठित क्षेत्र
1981-91	1.73	2.41
1991-98	0.6	1.1

स्रोत: श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

(शेष पृष्ठ 34 पर)

■ शहीदे आज़म के जन्मदिवस 27 सितम्बर के अवसर पर

भगत सिंह की बात सुनो! नयी क्रान्ति की राह चुनो!!

एक ही रास्ता – साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति का रास्ता

फांसी चढ़ने से ठीक तीन दिन पहले, फांसी के बजाय एक युद्धबन्दी के रूप में गोली से उड़ा दिये जाने की मांग करते हुए 20 मार्च 1931 को भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव ने पंजाब के गवर्नर को जो पत्र भेजा था, उसमें उन्होंने लिखा था, हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है – चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूंजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियों पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधाएं मिल जायें, अथवा समझौते हो जायें, इससे भी स्थिति नहीं बदल सकती, तथा जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है।..

''हो सकता है कि यह लड़ाई भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। किसी समय यह लड़ाई प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलती रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी विचार के स्तर पर यह युद्ध जारी रहे और कभी यह घटना इतनी भयानक हो जाए कि जीवन और मृत्यु की बाजी लग जाये। चाहे कोई भी परिस्थिति हो इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस स्थिति को चाहें चुन लें, परन्तु यह लड़ाई जारी रहेगी। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। बहुत सम्भव है कि यह युद्ध भयंकर स्वरूप ग्रहण कर ले। पर निश्चय ही यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती और मानवी सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

''निकट भविष्य में अन्तिम युद्ध लड़ा जाएगा और यह युद्ध निर्णायक होगा। साम्राज्यवाद व पूंजीवाद कुछ दिनों के मेहमान हैं। यही वह लड़ाई है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है और हम अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा।''

स्वातंत्र्योत्तर भारत के आर्थिक-राजनीतिक विकास की दिशा और परिणतियों तथा वर्तमान सर्वग्रासी ढांचागत संकट के हर पहलू के व्यापक और सूक्ष्म अध्ययन के बाद हमारा यह निश्चित मूल्यांकन है कि आने वाली कुछ दशाब्दियों का समय निर्णायक युद्ध की तैयारी सूत्रपात और समापन का कालखण्ड सिद्ध होगा। भारतीय पूंजीवाद ने आज जिस विश्व पूंजीवादी तंत्र के साथ उदारीकरण और मुक्त बाजार के नारे लगाते हुए स्वयं को पूरी तरह जोड़ लिया है, और अपने गतिरोध को दूर करने के लिए जिस साम्राज्यवाद के जूनियर पार्टनर की स्थिति को-खुले रूप में स्वीकार किया है, वह स्वयं मन्दी एवं ठहराव के अन्तकालिक रोग से जूझ रहा है। अस्तित्व के संकट से तात्कालिक मुक्ति के लिए साम्राज्यवादी लूट के लिए पूरे देश को खुला कर देने का जो मार्ग भारतीय पूंजीपति वर्ग ने चुना है, उसकी इसे भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। कर्ज के मकड़जाले में लातिनी अमेरिकी देशों की तरह उलझकर और सब-सहारा के अफ्रीकी देशों की तरह अकाल और भुखमरी के काले साये के नीचे जीते हुए मुल्क का अवाम यूं ही हाथ पर हाथ धरे बैठा नहीं रहेगा। बड़े पैमाने पर छंटनी, बेरोजगारी, आसमान छूती मंहगाई, भुखमरी, बेहद मंहगी शिक्षा व स्वास्थ्य-सुविधाएं और धनी-गरीब के बीच तेजी से बढ़ती खाई – नई आर्थिक नीति के ये नतीजे कुछ वर्षों के भीतर ही देशव्यापी व्यवस्था - विरोधी क्रान्तिकारी जनउभारों को जन्म देंगे। और कोई भी रास्ता नहीं है। दूसरा कोई भी विकल्प नहीं हैं। इससे भिन्न कोई भविष्य नहीं है।

यह युद्ध जो छिड़ने वाला है, कई दशकों तक जारी रह सकता है पर यही वह निर्णायक युद्ध होगा जिसकी भगतसिंह ने भविष्यवाणी की थी। यह साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति होगी। अब यही एकमात्र रास्ता शेष बचा है। इस रास्ते पर चल पड़ने में हमारा समाज जितना विलम्ब करेगा, इसका जीवन उतना ही दमघोंटू , दुःसह दुखदायी और तिल-तिल करके मारने वाला होता जाएगा।

ऐसी स्थिति में छात्रों-नौजवानों पर यह फौरी जिम्मेदारी आ पड़ी है कि वे स्वयं संगठित हों, जैसा कि भगतसिंह ने कहा था, "औद्योगिक क्षेत्रों की गन्दी बस्तियों और गांव के टूटे-फूटे झोपड़ों में रहने वाले करोड़ों लोगों का" जगायें, मेहनतकश जनता के क्रान्तिकारी संगठन बनायें और अपनी लड़ाई को उनकी लड़ाई से जोड़ें तथा भारतीय क्रान्ति के एक सही नये नेतृत्वकारी केन्द्र के निर्माण के लिए नये सिरे से प्रयास संगठित करें।

छात्रों – नौजवानों के लिए , प्रारम्भिक प्रयास के रूप में शुरूआत करने के लिए विचारार्थ हम कुछ सुझाव प्रस्तुत करते हैं:

1. भारतीय क्रान्ति, जो निश्चित तौर पर अतीत में दुनिया के अन्य देशों में हुई समाजवादी क्रान्तियों का ही एक नया परिष्कृत संस्करण

होगा; उसकी तैयारी के लिए – एक नये क्रान्तिकारी पुनर्जागरण और प्रबोधन के लिए नौजवानों को व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात करना होगा, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, पुनरूत्थान की सभी शक्तियों, पुरातन मूल्यों-मान्यताओं-संस्थाओं के विरूद्ध प्रचार करना होगा, उन्हें चुनौती देनी होगी और आमने-सामने की लड़ाई की तैयारी करनी होगी। कलम के सच्चे सिपाहियों की नई पीढ़ी को लेखनी और तलवार दोनों लेकर (पुनर्जागरण काल के महामानवों की भाँति) मैदान में उतरना होगा, अपनी मान्यताओं को जीवन में उतारना होगा तथा ढोंगी और नकली प्रगतिशीलों का पर्दाफाश करना होगा। दर्शनविचारधारा के क्षेत्र में, पूरे बौद्धिक मोर्चे पर युवा पीढ़ी को नये वैचारिक संघर्ष का सूत्रपात करना होगा।

2. छात्रों-नौजवानों को शहरों के आम लोगों के मुहल्लों और गांवों में नौजवानों के क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे और भगतसिंह और उनके साथियों द्वारा स्थापित नौजवान भारत सभा की परम्परा को पुनर्जीवित करना होगा। इसी प्रकार, स्कूलों-कालेजों-विश्वविद्यालयों में भी क्रान्तिकारी परम्परा का अनुसरण करते हुए, पेशेवर धन्धेबाज, चुनावी पूंजीवादी पार्टियों के पिछलग्गू छात्र संगठनों से अलग शिक्षा व्यवस्था और समाज व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव के सामान्य कार्यक्रम के आधार पर नये क्रान्तिकारी छात्र संगठन खड़े करने के प्रयास करने होंगे।

3.छात्रों और नौजवानों के संगठनों में सक्रियता के अतिरिक्त समय निकालकर नौजवान कार्यकर्ताओं को गावों और शहरों के मेहनतकशों के बीच भी जाना होगा, उनसे सीखना होगा, हर माध्यम से उनके बीच क्रान्तिकारी प्रचार कार्य करना होगा, जहां तक सम्भव हो सके, उनके संघर्षों में मदद एवं भागीदारी करनी होगी तथा उन्हें संगठित करने की कोशिश करनी होगी।

4. जैसा कि भगत सिंह ने **"नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम"** पत्र नामक अपने आखिरी महत्वपूर्ण दस्तावेज में क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा प्रस्तुत करते हुए लिखा था, छात्रों-नौजवानों को आम मेहनतकश जनता के जीवन और संघर्षों के साथ अपने को एकरूप करते हुए भारतीय क्रान्ति को नेतृत्व देने वाली एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण एवं गठन के बारे में भी सोचना और प्रयास करना होगा।

(क) जो सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी होगी, वैज्ञानिक समाजवाद जिसकी विचारधारा होगी और सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति जिसका लक्ष्य होगा; (ख) जो जनता के सभी वर्गों और समुदायों के जनसंगठनों का राजनीतिक मार्गदर्शन करेगी और उनके संघर्षों का नेतृत्व करेगी; (ग) पूर्णकालिक क्रान्तिकारी या पेशेवर कार्यकर्ता जिस पार्टी के मेरुदण्ड होंगे, जो भूमिगत होगी तथा सशस्त्र संघर्ष के लिए और राज्यसत्ता पर कब्जा जमाने के लिए तैयार होगी। भगत सिंह ने ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण के बारे में जो भी उपरोक्त दस्तावेज में लिखा था, वह आज भी प्रासंगिक है। नौजवानों को उनके इन सुझावों पर सोचना ही होगा।

हम यहां पर क्रान्तिकारी कार्यक्रम का कोई मसविदा नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं!

जो नौजवान शहीदे आज़म भगत सिंह के आदर्शों और विचारों को न केवल प्यार करतें हैं; न केवल उनका अध्ययन करते हैं, बल्कि उन्हें जीवन में उतारने और क्रान्ति का सिपाही बनने के बारे में भी सोचते हैं, उनके लिए विचारार्थ कुछ मुद्दे और एक व्यापक दिशा प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि आप एक ईमानदार, स्वाभिमानी, बहादुर, परिवर्तनकामी नौजवान हैं तो हम, 'आह्वान' की पूरी टीम, आपके सहयोद्धा हैं। हम उन नौजवानों के साथ मिल-बैठकर भगत सिंह के चिन्तन के आलोक में भारतीय क्रान्ति के रास्ते के बारे में सोचना-विचारना चाहते हैं और इस रास्ते पर चलना चाहते हैं।

इस उद्देश्य से सहमत तमाम युवा सहयात्रियों का हम आह्वान करते हैं। बातचीत के लिए, सोच – विचार के लिए तथा साथ – साथ एक नयी दिशा में आगे बढ़ने के लिए हम उन सभी नौजवानों को आमंत्रित करते हैं जो वास्तव में नौजवान हैं!

● सम्पादक मण्डल

जन्मदिवस 31 जुलाई के अवसर पर

जब तक सम्पत्ति मानव-समाज के संगठन का आधार है, संसार में अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। राष्ट्रों-राष्ट्रों की, भाई-भाई की, स्त्री-पुरुष की लड़ाई का कारण यही संपत्ति है। संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गांठ है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकता। मजदूरों के काम का समय घटाइये, बेकारों का गुजारा दीजिये, जमींदारों और पूंजीपतियों के अधिकारों को घटाइये, मजूरों और किसानों के स्वप्नों को बढ़ाइये, सिक्के का मूल्य घटाइए इस तरह के चाहे जितने सुधार आप करें, लेकिन यह जीर्ण दीवार इस टीप-टाप से नहीं खड़ी रह सकती। इसे नये सिरे से गिराकर उठाना होगा। ...

... सम्पत्ति ने मनुष्य को अपना क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक, आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है। मरते दम भी हमें यही हसरत रहती है कि हाय इस सम्पत्ति का क्या हाल होगा। हम सम्पत्ति के लिए जीते हैं, उसी के लिए मरते हैं। हम विद्वान् बनते हैं सम्पत्ति के लिए, गेरुए वस्त्र धारण करते हैं, सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर हम क्यों बेचते हैं? दूध में पानी क्यों मिलाते हैं? भांति-भांति के वैज्ञानिक हिंसा यंत्र क्यों बनाते हैं? ...

...इसका एक मात्र कारण सम्पत्ति है। जब तक सम्पत्तिहीन समाज का संगठन न होगा, जब तक संपत्ति-व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शान्ति न मिलेगी।

●प्रेमचन्द

■ मुद्दा

जातिगत अपमान व उत्पीड़न के नाश के लिए एक क्रान्तिकारी सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन की जरूरत

अरविन्द सिंह

अगस्त माह के आखिरी हफ्ते में दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में नस्ली भेदभाव के खिलाफ एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हुआ। भारत में मौजूद जातिगत भेदभाव व उत्पीड़न को इस सम्मेलन के एजेण्डे में शामिल करने की मांग को लेकर राजधानी दिल्ली के कुछ प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने एक मुहिम चलायी। मकसद शासक वर्गों पर दबाव बनाना था जिससे भारतीय प्रतिनिधि सम्मेलन में यह मुद्दा उठायें। पत्र-पत्रिकाओं में इस पर भी काफी चर्चा हुई कि जातिगत भेद को नस्लभेद माना जाये या नहीं।

जहां तक डरबन सम्मेलन में जाति के मुद्दे को उठाने या न उठाने का सवाल है इसका इस बहस से कोई रिश्ता नहीं बनता कि जातिगत भेद को नस्ली भेद माना जाये या नहीं। हालांकि इस पर जयोति बा फुले और डा. अम्बेडकर के विचारों में भी समानता नहीं थी। फुले जातिगत भेद को नस्ली भेद मानते थे। उनका मानना था कि आर्य और अनार्य दो अलग नस्ले हैं। जबकि डा. अम्बेडकर का मत इसके विपरीत था। अनेक इतिहासकारों ने भी इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट किये हैं। स्वतंत्र रूप से यह एक बहस का मुद्दा हो सकता है लेकिन डरबन सम्मेलन में जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न के प्रश्न को शामिल करने की बुद्धिजीवियों की मांग कतई गैरवाजिब मांग नहीं थी। क्योंकि, नस्ली श्रेष्ठता का जो अहम्मन्यतापूर्ण श्रेष्ठताबोध नस्ली भेदभाव के मूल में है, वही श्रेष्ठताबोध जातिगत भेदभाव के मूल में भी है। वही जियनवाद का भी मूल है और यही बुनियादी चीज इस प्रकार के अन्य सभी भेदभावमूलक सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं, संस्थाओं आदि में मौजूद है।

एक अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है कि क्यों बुद्धिजीवियों की मांग निहायत वाजिब थी। भारत में जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न की शिकार आबादी की संख्या दुनिया के किसी भी हिस्से में नस्ली भेदभाव व उत्पीड़न या अन्य किसी भी प्रकार के सामाजिक भेदभाव व उत्पीड़न या अन्य किसी भी प्रकार के सामाजिक भेदभाव या उत्पीड़न के शिकार लोगों से – दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की शिकार अश्वेत आबादी, अमेरिका में अश्वेत या रेड इंडियन, चिकानो, मुलाटो आबादी से बहुत अधिक है।

शहीदे आज़म के जन्मदिवस (27 सितम्बर) के अवसर पर

"... अ छ ू त कहलाने वाले असली जनसेवकों तथा भाइयो उठो! ... संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इन्कार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुंह की आरे न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झांसे में मत पड़ना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है।... उसकी चालो से बचना। ... तुम असली सर्वहारा हो। ... संगठनबद्ध हो जाओ। ... उठो और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रान्ति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधर हो, वास्तविक शक्ति हो, सोये हुए शेरो! उठो, और बगावत खड़ी कर दो।"

(-भगतसिंह, अछूत समस्या, यह लेख जून, 1928 में 'किरती' में 'विद्रोही' नाम से प्रकाशित हुआ था)

लेकिन डरबन में भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने यह मांग नहीं उठायी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। समाज में मौजूद हर प्रकार के सामाजिक- धार्मिक विभेदों को, हर प्रकार के प्रगतिविरोधी-मानवताविरोधी मूल्यों-मान्यताओं, विचारों और संस्कृति को व्यवस्था की हिफाजत के लिए हर सम्भव तरीकों से इस्तेमाल करने की कोशिशों में निरन्तर जुटे रहने वाले शासक वर्गों के प्रतिनिधियों से इसकी उम्मीद भी भला क्यों हो? संघ परिवार के वफादार स्वयंसेवक अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने तो इस मांग को "राष्ट्रविरोधी" तक कह डाला। कोई इन "राष्ट्रवादियों" से पूछे कि अगर यह "घर का मामला" है तो इन्होंने इसके समाधान के लिए अब तक क्या किया? ये तो इन बर्बर-अमानवीय भेदभाव को जड़ से उखाड़ फेंकने के बजाय 'सामाजिक समरसता' की दुहाई देकर इसे बरकरार रखने की ही प्रच्छन्न वकालत करते रहे हैं।

बहरहाल, डरबन सम्मेलन अब सम्पन्न हो चुका है। यूं भी यह प्रश्न उठाया जाये या नहीं, इससे भी बुनियादी प्रश्न यह है कि इसके समाधान के लिए एक जबर्दस्त सामाजिक आन्दोलन संगठित करने की दिशा में क्या किया जा रहा है या क्या किया जाना चाहिए?

एक वीभत्स, कुरूपतम, जटिल-ऐतिहासिक प्रश्न

यह तो निर्विवाद है कि भारतीय समाज के इस वीभत्स, कुरूपतम जटिल-ऐतिहासिक प्रश्न को हल करने के लिए एक जबर्दस्त सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन की दरकार है। महज कुछ रस्मी कार्रवाइयों, निठल्ले अकादमिक विमर्शों, शासक वर्गों को प्रतिवेदन भेजने या कानूनी-संवैधानिक उपायों से इसे कतई हल नहीं किया जा सकता। सहस्राब्दियों पुराना यह प्रश्न समय बीतने के साथ अधिकाधिक जटिल होता हुआ अपने जटिलतम और संश्लिष्टतम रूप में आज हमारी आंखों में घूर रहा है।

न केवल एक भेदभावमूलक सामाजिक संस्था के रूप में जाति का प्रश्न हमारे समाज में मौजूद है, बल्कि दैनन्दिन आचार-व्यवहार, बोली-भाषा-मुहावरे, मूल्यों-मान्यताओं-संस्कारों आदि के रूप में सामाजिक जीवन में यह इतने बारीक रूप में, गहराई और व्यापकता में, इतने विकट रूप में घुला-मिला है कि इसके समाधान की कोई आदर्शवादी, सरलीकृत कोशिश मायूसी को ही जन्म देगी! सवर्ण कही जाने वाली आबादी ही नहीं वरन पिछड़ी कही जाने वाली आबादी जिन्हें फुले ने शूद्र जातियां कहा है (और कई प्रमुख इतिहासकार भी आज यही मानते हैं), आज भी दलित आबादी के प्रति जिस तरह का भेदभाव करती है, जिस तरह अपमानित और उत्पीड़ित करती है उससे यदि आज दलित आबादी के मन में एक भीषण आक्रोश खदबदा रहा है तो यह नितान्त स्वाभाविक है। सदियों से अपमानित-लांछित लोग अगर आज अपनी मानवीय गरिमा, सम्मान और अपनी अस्मिता के लिए आकुल-बेचैन हैं तो इससे अधिक स्वाभाविक और कुछ नहीं हो सकता है। अगर कहीं अपनी गरिमा और सम्मान के प्रति वे अतिसंवेदनशील भी नज़र आते हैं तो यह भी उतना ही स्वाभाविक है। स्थितियां ऐसी ही हैं कि कोई संवेदनशील गैरदलित भी अगर तर्कपरक न हो तो उस तक भी यह अहसास नहीं हो पाता कि उसके किस आचरण या अभिव्यक्ति ने अनजाने ही किसी दलित व्यक्ति को अपमानित कर दिया है। इसलिए, जाति प्रश्न पर दलितों की तथाकथित अतिसंवेदनशीलता को भी तर्कपरक ढंग से समझने और महसूस करने की जरूरत है।

एक विकट सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न

जाति का प्रश्न एक विकट सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न के रूप में हमारे बीच मौजूद है। न रंगभेद से इसकी तुलना की जा सकती है और न ही दुनिया के किसी भी हिस्से में मौजूद अन्य किसी भी प्रकार के सामाजिक भेदभाव व उत्पीड़न से। दलित जातियां हमारे सामाजिक ढांचे में एक ही साथ घुली-मिली भी हुई हैं और साथ ही वे भीषण पार्थक्य व अलगाव की शिकार भी हैं। खुले, निरंकुश जाति आधारित उत्पीड़न के साथ-साथ प्रच्छन्न उत्पीड़न व अपमान के इतने रूप मौजूद हैं और इसकी निरन्तरता का इतना लम्बा इतिहास है कि यह भारतीय समाज की एक अनन्य परिघटना बन जाती है। ऐसे में, इसके समाधान के प्रति एक बेहद संजीदा रुख अख्तियार करने की जरूरत है।

लेकिन विडम्बना यह है कि आजकल प्रगतिशील कही जाने वाली जमात के भीतर इस प्रश्न पर एक संवेदनशील संजीदे रुख की जगह सस्ती लुकमेबाजियों और जुमलेबाजियों का चलन खूब चल पड़ा है। कहीं दलित तबके की सामाजिक मुक्ति के प्रति कागजी-सस्ती भावुकतावादी प्रतिबद्धताओं का इजहार हो रहा है तो कहीं बुर्जुआ राजनीति के दायरे में अपनी मजबूत पकड़ बनाने की ट्रिकबाजियों से दलित मुक्ति का सपना साकार किया जा रहा है। न ही संस्कृति के दायरे में सक्रिय नव-आविष्कृत दलित प्रेमियों के पास दलित मुक्ति का कोई प्रोजेक्ट है और न ही दलित राजनीति के अलमबरदारों के पास। सिर्फ भावुक बयान हैं, भोंडा दलित-प्रेम प्रदर्शन है और अवसरवादी राजनीतिक तिकड़में हैं।

जो ईमानदार-संवेदनशील लोग भारतीय समाज से जाति की मानवद्रोही संस्था व जातिगत अपमान-उत्पीड़न के बर्बर-अमानवीय प्रचलनों को जड़मूल से नाश करना चाहते हैं उन्हें संजीदगी से गहराई में जाकर समस्या को समझना होगा और इसके रास्ते के बारे में सोचना होगा। उन्हें एक समग्र प्रोजेक्ट अपने सामने रखकर एक जुझारू सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन निर्मित करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा और हर प्रकार के शोषण-उत्पीड़न से समूची भारतीय जनता की मुक्ति के व्यापक लक्ष्य के साथ इसे जोड़ना होगा।

वर्ग और जाति के जटिल अन्तर्सम्बन्ध

जातिगत विभेद के खिलाफ सही और कारगर रणनीति के साथ संघर्ष के लिए जरूरी है कि जाति और वर्ग के जटिल अन्तर्सम्बन्धों की तीक्ष्ण वैज्ञानिक दृष्टि के साथ पड़ताल की जाये। किसी भी तरह का सरलीकृत निष्कर्ष घातक साबित होगा। वर्ग ही जाति है या जाति ही वर्ग है – ये दोनों ही निष्कर्ष भारतीय समाज की आज की सच्चाई से दूर खड़े हैं और सामाजिक बराबरी के लक्ष्य तक कतई नहीं पहुंचायेंगे।

भारतीय इतिहास का एक प्राचीन कालखण्ड ऐसा रहा है जब जाति और वर्ग हूबहू एक ही सामाजिक कोटियां थीं। यह उस कालखण्ड के सरलीकृत उत्पादन सम्बन्ध की जमीन पर खड़ा था। लेकिन आज स्थिति ठीक ऐसी ही नहीं है। पिछली आधी सदी के दौरान देश में पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया ने स्थितियों में काफी बदलाव किया है। आज एक बदलाव साफ तौर पर आया है कि धूर्त और मक्कार नये शासक वर्ग – भारतीय पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवादियों की बौद्धिक-भौतिक मदद से इस तरह की नीतियां लागू की हैं कि दलित जातियों के भीतर से भी एक अत्यन्त छोटा सा उच्च और मध्यम मध्य वर्ग पैदा हुआ है। गांवों में तो यह वर्ग नगण्य है लेकिन आरक्षण सुविधाओं का लाभ उठाकर शहरों में नौकरी-चाकरी और स्वतंत्र पेशों में इस छोटे से दलित मध्य वर्ग की हिस्सेदारी बनी है।

न केवल एक भेदभावमूलक सामाजिक संस्था के रूप में जाति का प्रश्न हमारे समाज में मौजूद है, बल्कि दैनन्दिन आचार- व्यवहार, बोली-भाषा- मुहावरे, मूल्यों-मान्यताओं-संस्कारों आदि के रूप में सामाजिक जीवन में यह इतने बारीक रूप में, गहराई और व्यापकता में, इतने विकट रूप में घुला-मिला है कि इसके समाधान की कोई आदर्शवादी, सरलीकृत कोशिश मायूसी को ही जन्म देगी!

लेकिन दलित आबादी के बहुलांश की ज़िन्दगी का सच आज भी यही है कि वह आर्थिक और सामाजिक दोनों ही रूपों में समाज की सबसे निचली पायदानों पर खड़ा है। हम कह सकते हैं कि भारत में आज भी दलित प्रश्न मुख्यत: भूमि सम्बन्धों से जुड़ा प्रश्न है, यानी इसका सुनिश्चित आर्थिक आधार है। कारण यह कि हमारे देश में भूमि सुधार का काम क्रान्तिकारी ढंग से सम्पन्न नहीं हुआ। यह मन्थर, दुस्सह यंत्रणादायी प्रतिक्रियावादी ढंग से हुआ। पुरानी भूमि व्यवस्था में जो सामन्तों के बन्धुआ थे वही आज भी नये भूस्वामियों के उजरती गुलाम (wage slave) हैं। इन्हीं के बीच से एक बड़ा हिस्सा गांवों से उजड़कर महानगरों की झुग्गी-झोंपड़ियों में रह रहा है तथा मुख्यत: असंगठित, ठेके के मजदूर या दिहाड़ी मजदूर की ज़िन्दगी बसर कर रहा है।

इसके साथ ही हमें इस सच्चाई की भी अनदेखी नहीं करनी होगी कि गैरदलित

मध्यवर्गीय किसान पृष्ठभूमि से भी एक आबादी लगातार अपनी जगह-जमीन से उजड़कर तेजी से उजरत कमाने वाले आधुनिक गुलामों की पांतों में शामिल होती जा रही है। यह सच है कि इस आबादी के भीतर दलित विरोधी विचार; भावनाएं व संस्कार मौजूद हैं, लेकिन अगर सही वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ कारगर क्रान्तिकारी प्रचार और संगठन की कार्रवाइयां संचालित की जायें तो इनके बीच एक व्यापक एकता अवश्य ही कायम की जा सकती है।,

दलित मध्य वर्ग की राजनीति

दलित आबादी के बीच से पैदा हुआ मध्य वर्ग (कुल दलित आबादी का मुश्किल से तीन-चार प्रतिशत भाग) यह महसूस करता है कि दलित प्रश्न का कोई आर्थिक पहलू है ही नहीं, सिर्फ सामाजिक-धार्मिक पहलू है। अपनी स्थिति को पूरी दलित आबादी पर लागू करने की कोशिश यह दलित मध्यवर्ग इसलिए करता है क्योंकि यह चाहता है कि आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्ग तक ऊपर उठ आने के बाद उसे गैरदलित जातियों के मध्यवर्ग के लोग सदियों पुराने प्रतिक्रियावादी संस्कारों को छोड़कर सम्मान और बराबरी का दर्जा दें। पर अन्य जातियों की मध्यवर्गीय आबादी (और मजदूर आबादी भी) इस सत्तापोषित दलित मध्य वर्ग को ही सभी दलित जातियों का प्रतिनिधि मानकर इनके प्रति और अधिक दुराव का रुख अख्तियार करती है, जिसका नतीजा दलित मध्य वर्ग के लोगों के बजाय अधिकांशत: भयंकरतम रूप में ग़रीब दलित आबादी को भुगतना पड़ता है। इस तरह न केवल मध्यवर्ग बल्कि ग़रीब आबादी भी आपस में बंट जाती है और पूंजीवादी व्यवस्था को ऐतिहासिक रूप से एक महत्वपूर्ण लाभ मिल जाता है।

लेकिन विडम्बना यह है कि आजंकल प्रगतिशील कही जाने वाली जमात के भीतर इस प्रश्न पर एक संवेदनशील संजीदे रुख की जगह सस्ती लुकमेबाजियों और जुमलेबाजियों का चलन खूब चल पड़ा है। ..... न ही संस्कृति के दायरे में सक्रिय नव-आविष्कृत दलित प्रेमियों के पास दलित मुक्ति का कोई प्रोजेक्ट है और न ही दलित राजनीति के अलमबरदारों के पास। सिर्फ भावुक बयान हैं, भोंडा दलित-प्रेम प्रदर्शन है और अवसरवादी राजनीतिक तिकड़में हैं।

यह सच स्वीकारना ही होगा कि कुछेक अपवादों को छोड़कर दलित मध्यवर्ग और बुद्धिजीवियों की अच्छी-खासी आबादी आज व्यवस्थापोषक और सुविधाभोगी हो चुकी है। यह किसी भी प्रकार के सामाजिक तूफानों से थरथर कांपती है, व्यापक ग़रीब आबादी के दुख-दर्द के प्रति यह संवेदनहीन हो चुकी है और सिर्फ आरक्षण आदि सुविधाओं को बचाने की कोशिश में जुटी इसी व्यवस्था के दायरे में सामाजिक समानता पा लेने का असम्भव स्वप्न देखती रहती है।

बसपा की राजनीति

कांशीराम-मायावती की पार्टी इसी दलित उच्च मध्यवर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी है। "दलितों को सत्ता में आने के लिए शैतान से भी सौदा करने में नहीं हिचकना चाहिये" – यह कहकर बहुजन समाज पार्टी चुनावी अवसरवाद की खुली तरफदारी करती है। यह पार्टी भी पूरी तरह उन पूंजीवादी संसदीय पार्टियों की गिरोहबन्दी में शामिल है जिनकी गरीब विरोधी नयी आर्थिक नीतियों पर पूर्ण सहमति है।

यह लफ्फाजी करते हुए कि भारत में मुख्य मुद्दा आर्थिक नहीं सामाजिक-धार्मिक है यह पार्टी उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के विरोध में एक शब्द भी नहीं बोलती । जबकि इन्हीं नीतियों की बदौलत गांवो की जो भारी आबादी अपनी जगह-जमीन से उजड़कर पूंजी की निकृष्टतम कोटि की उजरती गुलामी के लिए मजबूर हो रही है उसमें दलित जातियों का अनुपात सर्वाधिक है।

भूमण्डलीकरण के दौर में देश की जिस पन्द्रह फीसदी आबादी के लिए समृद्धि का स्वर्गलोक बनाया जा रहा है उसका उपभोग कुल दलित आबादी का महज दो प्रतिशत भाग मुश्किल से कर पाएगा। चूंकि यह सुविधाभोगी वर्ग अपने को आम दलित आबादी की नियति से पूरी तरह काटकर साम्राज्यवादी विश्व और भारतीय पूंजीवाद के साथ पूरी तरह नत्थी हो चुका है, इसलिए , इनकी पार्टी – बहुजन समाज पार्टी साम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद के प्रति वफादार पार्टी है।

दलित मुक्ति और अम्बेडकर का नाम लेकर तथा आर्थिक शोषण की अपेक्षा तात्कालिक तौर पर अधिक मारक लगने वाले सामाजिक उत्पीड़न और सदियों की गुलामी के खिलाफ गरमागरम ,हवाई और लोकरंजक फतवे दे-देकर तथा राजनीतिक पटल पर किसी संगठित क्रान्तिकारी विकल्प की नामौजूदगी का लाभ उठाकर बहुजन समाज पार्टी ने ग्रामीण और शहरी दलित गरीब आबादी के बीच अपना एक व्यापक जनाधार तैयार किया है । मिथकों, ऐतिहासिक स्मृतियों के गलत प्रयोग और नायक-पूजा ,मूर्ति-पूजा की तर्क विरोधी, विज्ञान-विरोधी राजनीतिक संस्कृति के प्रचार द्वारा इस पार्टी ने मेहनतकश तबके के दलित हिस्सों की जनवादी चेतना को कुन्द करने में तथा पराजित मानसिकता की जमीन पर फासिस्ट निरंकुशशाही की संस्कृति की स्वीकार्यता को स्थापित करने में अहम भूमिका निभायी है और पूंजीवाद की ऐतिहासिक सेवा की है।

वैसे, सच तो यह भी है कि बहुजन समाज पार्टी पूंजीवादी जनवाद के खेल के नियमों में भी कोई भरोसा नहीं रखती। इसमें कोई चुनाव नहीं होता। सिर्फ मनोनयन होते हैं। 'साहब' और 'बहिनजी' के इशारे ही कानून होते हैं। जिस पार्टी की आन्तरिक संरचना ही इतनी फासिस्ट किस्म की हो वह दलितों को सम्पूर्ण जनवादी राजनीतिक-सामाजिक अधिकार और आर्थिक-सामाजिक समानता दिलाने के कठिन संघर्ष की वास्तविक समर्थक भला कैसे हो सकती है?

एक क्रान्तिकारी प्रोजेक्ट एवं रणनीति की जरूरत

हमारे समाज में जातिगत अपमान-उत्पीड़न की जड़ें जितनी गहरी हैं और एक लम्बे ऐतिहासिक काल से सामाजिक संरचना में इसकी मौजूदगी की निरन्तरता के कारण इसकी जो जटिल-सॉश्लिष्ट प्रकृति है उसे देखते हुए एक बात बिल्कुल साफ है कि किसी सामाजिक सुधार आन्दोलन मात्र से इसे नहीं मिटाया जा सकता। आज दलितों को एक क्रान्ति की जरूरत है – एक सर्वव्यापी जनक्रान्ति जो उनके सामाजिक उत्पीड़न-अपमान की बुनियाद को ही मिटा डाले। एक ऐसी जनक्रान्ति जो मौजूदा आर्थिक-राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक – यानी सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में आमूलगामी बदलाव लेकर आये।

यह भूलना न चाहिए कि आज

भूमण्डलीकरण के दौर में खड़े होकर हमें जाति प्रश्न के समाधान की रणनीति बनानी है। यह प्रश्न आज उसी रूप में हमारे सामने नहीं मौजूद है, जिस रूप में यह इतिहास के मध्यकाल में मौजूद था या राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में मौजूद था या 1947 में भारतीय पूंजीपति वर्ग के हाथ में सत्ता हस्तान्तरण के समय मौजूद था। विगत आधी सदी के दौरान आर्थिक सामाजिक विकास ने जो जटिलताएं पैदा की हैं उनकी अनदेखी कतई नहीं की जा सकती। आज भूमण्डलीकरण के दौर में – देशी-विदेशी पूंजी की नग्न-निरंकुश लूट के दौर में जो नया सामाजिक ध्रुवीकरण उभर रहा है उसके मद्देनजर ही हमें ठोस रणनीति बनानी होगी।

आज दलित मुक्ति का प्रश्न साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी नयी जनक्रान्ति के समग्र क्रान्तिकारी प्रोजेक्ट का अंग ही हो सकता है। एक अर्थ में यह जनक्रान्ति दलित क्रान्ति ही होगी। कारण कि क्रान्ति जनता करती है और देश की समूची शोषित-उत्पीड़ित आबादी की संख्या की गणना की जाये तो इसमें दलित आबादी ही बहुसंख्या में है। इस समूची दलित आबादी को इस जनक्रान्ति की मुख्य शक्ति के रूप में संगठित करना आज दलित मुक्ति के प्रोजेक्ट का प्रमुख कार्यभार होना चाहिए।

लेकिन, इसके साथ ही इस जनक्रान्ति का यह भी एक बुनियादी कार्यभार है कि जाति के सामाजिक प्रश्न पर भी आन्दोलन एवं क्रान्तिकारी प्रचार की व्यापक रणनीति पर अमल किया जाये। दूसरे शब्दों में, आर्थिक-राजनीतिक मुद्दों पर संघर्ष के साथ ही एक जुझारू सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन तैयार किया जाये। पहले आर्थिक या पहले सामाजिक – इन दो छोरों की एकांगी, यांत्रिक सोच से बचते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन को भी आर्थिक-राजनीतिक संघर्षों जैसा बुनियादी कार्यभार मानकर आगे बढ़ना होगा। बेशक, जब तक देश का मेहनतकश अवाम क्रान्तिकारी संघर्षों के जरिये आगे बढ़कर राजनीतिक सत्ता पर कब्जा नहीं कर लेता तब तक राजनीतिक आन्दोलन ही प्रमुख कार्यभार रहेगा। लेकिन एक क्रान्तिकारी सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन के बिना प्रतिक्रियावादी, निम्नपूंजीवादी अराजकतावादी दलित राजनीति की जमीन नहीं तोड़ी जा सकती और न ही दलित-गैरदलित मेहनतकश अवाम की संग्रामी एकजुटता कायम करके उस पूंजीवादी व्यवस्था के नाश का आधार तैयार किया जा सकता है जो आज अपने हित में, पुरानी व्यवस्थाओं से विरासत के तौर पर अर्जित दलित-प्रश्न और जाति के प्रश्न को जीवित रखे हुए है।

यह बात भी यहां बिल्कुल साफ हो जानी चाहिए कि साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी जनक्रान्ति (जो उस अर्थ में दलित क्रान्ति ही होगी, जैसा ऊपर वर्णित है) के बाद नयी व्यवस्था कायम होते ही जाति का प्रश्न रातों रात हल नहीं हो जायेगा। एक तो नयी व्यवस्था, जैसा कि भगतसिंह का सपना था, उत्पादन, राजकाज और समाज के सम्पूर्ण ढांचे पर मेहनतकश अवाम के नियंत्रण वाली व्यवस्था एक कठिन संक्रमण काल से होकर गुजरेगी। इस संक्रमण काल में एक तो मौजूदा पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली भी रातों रात समाप्त नहीं हो सकती, जो जाति व्यवस्था की मौजूदगी का आधार बनी रहेगी और दूसरे पुराने समाज की पुरानी आदतों, मूल्यों-मान्यताओं के विरुद्ध लम्बे समय तक संघर्षों के बाद ही उन्हें समाप्त किया जा सकेगा। कह सकते हैं कि क्रान्ति के बाद प्रचण्ड सांस्कृतिक क्रान्तियों की आवश्यकता होगी। यह कहना शायद अतिश्योक्ति न होगी कि दलित प्रश्न, स्त्री प्रश्न और ऐसे ही अन्य सामाजिक प्रश्नों के सम्पूर्ण समाधान के लिए भारत में एक-दो नहीं कई सांस्कृतिक क्रान्तियों की आवश्यकता होगी।

समाज के आत्मिक-सांस्कृतिक जीवन में जबर्दस्त हलचल पैदा करने की जरूरत

जनक्रान्ति के समग्र प्रोजेक्ट के अंग के रूप में एक जुझारू सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन आज समय की मांग है। दरअसल, अतीत में मुड़कर देखें तो यह सिरा भक्ति आन्दोलन के दौर में छूट गया सा लगता है। उस दौर में राजाओं-सामन्तों-जमींदारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष के साथ ही विकट सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन भी हमें दिखता है। कबीर, नानक, रैदास, पलटू, दादू आदि ने सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों पर अपने युग की सीमाओं के भीतर प्रचण्ड संघर्ष किया। इनमें से कुछेक की रुझान एक हद तक सुधारवादी हो सकती है लेकिन उन्होंने भेदभावमूलक सामाजिक संस्थाओं, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं को साहसपूर्ण ढंग से सीधी चुनौती दी। इस सन्दर्भ में हमें सतनामियों के विद्रोह को भी नहीं भूलना चाहिए। इन्होंने पूरे समाज में एक जबर्दस्त हलचल मचा दी थी।

दूसरी ओर, हम यह देखते हैं कि औपनिवेशिक गुलामी के काल में जो समाज सुधार आन्दोलन हुए वे व्यापक आबादी में उतनी हलचल नहीं मचा सके। इसके समाज सुधार आन्दोलन मध्यवर्ग को छूते हुए निकल जाते थे और व्यापक मजदूर-किसान आबादी तक तो ये पहुंच ही नहीं पाते थे। मध्य वर्ग की आबादी के भी आत्मिक-सांस्कृतिक जगत ये हलचल नहीं मचाते थे। इसलिए, आज हमें जरूरत इस बात की है कि हम भक्तिकाल के उस धर्मसुधार आन्दोलन, जो अपने युग की सीमाओं में एक क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलन था, के छूटे हुए सिरे को पकड़ें, जिसे औपनिवेशिक काल के समाज सुधार आन्दोलन नहीं पकड़ सके।

यहां एक बार यह दुहरा देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि फिर भी आज दलितों को सबसे अधिक जरूरत एक राज्य क्रान्ति की है। दलित मध्य वर्ग और बुद्धिजीवियों का जो हिस्सा आज ईमानदारी के साथ दलित मुक्ति के सवालों से जूझ रहा है उन्हें इस कड़वे सच को अंगीकार करना ही होगा कि उनके जिन रहनुमाओं ने दलित मुक्ति के सवाल को सिर्फ कानूनी-संवैधानिक दायरों में ही सीमित करके देखा, उनकी नीयत चाहे जितनी अच्छी रही हो और एक हद तक उन्होंने आन्दोलन आगे बढ़ाया भी हो, लेकिन ऐतिहासिक तौर पर

यह सच स्वीकारना ही होगा कि कुछेक अपवादों को छोड़कर दलित मध्यवर्ग और बुद्धिजीवियों की अच्छी-खासी आबादी आज व्यवस्थापोषक और सुविधाभोगी हो चुकी है। यह किसी भी प्रकार के सामाजिक तूफानों से थरथर कांपती है, व्यापक ग़रीब आबादी के दुख-दर्द के प्रति यह संवेदनहीन हो चुकी है और सिर्फ आरक्षण आदि सुविधाओं को बचाने की कोशिश में जुटी इसी व्यवस्था के दायरे में सामाजिक समानता पा लेने का असम्भव स्वप्न देखती रहती है।

उनकी भूमिका नकारात्मक ही मानी जायेगी।

ये प्रश्न चाहे जितने असुविधाजनक लगें लेकिन तमाम ईमानदार दलित बुद्धिजीवियों को खुले दिमाग से और सही वैज्ञानिक नजरिये को आत्मसात करते हुए रिपब्लिकन पार्टी, पेरियार के आन्दोलन, दलित पैंथर आन्दोलन की परिणतियों का सम्यक विश्लेषण भी करना ही होगा। डा. अम्बेडकर की राजनीति का झंडा ढोने वाली रिपब्लिकन पार्टी का खंड-खंड में विघटित होना और इसके कुछ हिस्सों को बड़ी पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों द्वारा गोद ले लेना क्या बताता है? तमिलनाडु में परियार के सामाजिक आन्दोलन से जन्मी द्रमुक और अद्रमुक जैसी पार्टियों के दलित जातियों के बीच से पैदा हुए मध्यवर्ग को धन और सत्ता की बन्दरबांट में हिस्सा दिलाने के बाद खांटी क्षेत्रीय पूंजीवादी पार्टियों के रूप में स्थापित हो जाने से क्या निष्कर्ष निकलते हैं? महाराष्ट्र से उठा दलित पैंथर आन्दोलन मध्यवर्गीय दलित युवाओं के मध्यमवर्गीय उग्र आक्रोश की सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से आगे क्यों नहीं जा सका?

युवाओं को विद्रोह का झंडा उठाना होगा

हर परिवर्तनकामी आन्दोलन की तरह जातिगत उत्पीड़न एवं अपमान के खिलाफ सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन में युवाओं को ही सबसे पहले आगे आना होगा और उन्हें इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना होगा। उन्हें अपने आचरण से समाज में नजीरें पेश करनी होंगी। सवर्ण या पिछड़ी कही जाने वाली जातियों से आने वाले वे नौजवान, जो संवेदनशील हैं और जातिगत श्रेष्ठताबोध के विचारों-भावनाओं, मूल्यों-मान्यताओं, आदर्तों-संस्कारों से गहरी नफ़रत करते हैं उन्हें आगे-आगे आकर इसके खिलाफ बगावत का झंडा बुलन्द करना होगा।

हमें राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर के विद्रोही लोगों की विरासत से खुद को जोड़ना होगा। राहुल सांकृत्यायन, रामावतार शास्त्री, राधामोहन गोकुल जी, नजरुल इस्लाम, सत्यभक्त और उन अनेक क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यकर्ताओं से प्रेरणा लेनी होगी जिन्होंने अपनी कथनी और करनी, दोनों से मानवता को अपमानित करने वाली सामाजिक संस्थाओं, जाति की संस्था जिसमें प्रमुख थी, रुढ़ियों आदि के खिलाफ बगावत का झंडा बुलन्द किया और अपने समय में समाज के सामने उदाहरण प्रस्तुत किये। राहुल सांकृत्यायन ने तो कहा भी है कि लोग रुढ़ियों को इसलिए मानते हैं क्योंकि उनके सामने रुढ़ियों को तोड़ने के पर्याप्त उदाहरण नहीं मौजूद हैं।

राजनीतिक-सांस्कृतिक मोर्चे के संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं को तो अपने पारिवारिक, सामाजिक, निजी जीवन एवं व्यवहार में अपने निजी आचरण से यह सिद्ध करना होगा कि वे स्वयं जातिगत पूर्वाग्रहों एवं संस्कारों से मुक्त हैं। क्रान्तिकारी संगठनों को भी ऐसी कठोर आचार संहिताएं बनानी चाहिए और अगुआ संगठनकर्ताओं को इन्हें व्यवहार में उतारना चाहिए। क्रान्तिकारी युवाओं को समाज को यह विश्वास तो दिलाना ही होगा कि उनकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं है।

हर परिवर्तनकामी आन्दोलन की तरह जातिगत उत्पीड़न एवं अपमान के खिलाफ सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन में युवाओं को ही सबसे पहले आगे आना होगा और उन्हें इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना होगा। उन्हें अपने आचरण से समाज में नजीरें पेश करनी होंगी। ..... इसके खिलाफ बगावत का झंडा बुलन्द करना होगा।

इसके साथ ही क्रान्तिकारी युवाओं को व्यापक समाज में, और आम युवाओं के बीच उनके संकीर्ण, मानवताविरोधी जातिगत पूर्वाग्रहों-संस्कारों से पीछा छुड़ाने और सच्चा इंसान बनने के लिए धिक्कारना होगा, ललकारना होगा। मेहनतकश आबादी के बीच भी क्रान्तिकारी प्रचार करते हुए यह समझाना होगा कि ग़रीबों-शोषितों की कोई जाति नहीं होती और अगर वे अपने जातिगत पूर्वाग्रहों-संस्कारों से चिपके रहेंगे तो उनकी मुक्ति असम्भव है।

क्या उन नौजवानों को सच्चे अर्थों में नौजवान कहा जा सकता है जो सामाजिक जीवन की बात तो दूर अपने व्यक्तिगत जीवन तक में मानवतावादी जनवादी अधिकारों के लिए बगावत नहीं कर सकते। हमारे नग्न-निरंकुश सामाजिक ढांचे की देन के रूप में पारिवारिक ढांचे में भी तरह-तरह के सामन्ती, अतर्कपरक, गैरजनवादी लोकाचार मौजूद हैं जिन्हें साहसपूर्वक तोड़ने के लिए आगे आना नौजवानों का कर्तव्य है। पारिवारिक ढांचे में प्रगतिविरोधी पुराने मूल्यों की जकड़न इतनी जबर्दस्त है कि कोई युवा सहज मानवीय प्रेम के लिए भी आज़ाद नहीं है। हमारे जैसे समाज में जहां पुराने रीति-रिवाजों, परम्पराओं की जकड़न इतनी भीषण हो, तो वहां सामाजिक समानता के लिए संघर्ष के साथ ही प्रेम करना भी एक शानदार बगावत बन जाती है।

घोषणा पत्र: प्रपत्र-1

पत्रिका का नाम	- आह्वान कैम्पस टाइम्स
आवर्तिता	- त्रैमासिक
भाषा	- हिन्दी
प्रकाशन स्थान	- गोरखपुर
प्रकाशक/स्वामी का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर' कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रक का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर' कल्याणपुर, गोरखपुर
सम्पादक का नाम	- अभिनव
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर' कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रणालय का नाम	- आफसेट प्रेस इलाहीबाग, गोरखपुर

मैं आदेश सिंह, यह घोषणा करता हूं कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य है।

हस्ताक्षर
आदेश सिंह
(प्रकाशक/मुद्रक/स्वामी)

भारत में प्रेम एक साहसिक विद्रोह है!

कविता

पुरानी दुनिया के अंधेरे में प्रेम करने वालों का आखेट किया जा रहा है। जाति, धर्म और परम्परा के स्वयंभू ठेकेदार शिकारियों के समान प्रेमियों का पीछा कर रहे हैं। वे उनका वध कर रहे हैं और उनके चेहरों पर वही गर्वीली मुद्रा है जो शिकार के बाद, बाघ या शेर की लाश पर बूट रखे, बन्दूक थाम्हे, हैट लगाये, मूंछ ऐंठते, फोटो खिंचाते पुराने जमाने के शिकारियों के चेहरों पर अंकित हुआ करती थी।

जाति और धर्म का बंधन तोड़ कर प्रेम करने वालों को इक्कीसवीं सदी के "पंच परमेश्वरों" ने आदर्श "बलिपशु" घोषित कर दिया है। परम्परा-रक्षा का यज्ञ जोर-शोर से जारी है। 'नमो अंधकारम्' का मन्त्र-जाप आकाश गुंजा रहा है। प्रेम से "अशुद्ध" आत्माओं की शुद्धि के लिए नरबलि का अनुष्ठान किया जा रहा है। भूमण्डलीकृत विश्व के पिछवाड़े के अंधेरे कोनों में कहीं बुर्का न पहनने वाली स्त्रियों पर तेजाब फेंका जा रहा है, कहीं स्त्री को मृत पति के साथ चिता पर जीवित भूना जा रहा है, कहीं गला रेत कर तंदूर में पकाया जा रहा है, कहीं सरेआम निर्वस्त्र घुमाया जा रहा है, तो कहीं प्रेम करने वालों को पंचायत बैठाकर फांसी दी जा रही है या सड़क पर गोली से उड़ाया जा रहा है।

परम्परा और व्यवस्था के रखवाले प्रेम करने वालों से हमेशा से डरते रहे हैं और उनके लिए तरह-तरह की सज़ाएं तजवीज करते रहे हैं। पर अब, बदलते समय की तेज रफ्तार ने मंथर गति से सदियों से रेंगते आ रहे भारतीय समाज के युवाओं के एक हिस्से में रुढ़ियों और अन्यायपूर्ण परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह की जो भावना उत्पन्न की है, उससे पुरानी व्यवस्थाओं के रखवाले एकदम बौखला उठे हैं। प्रेमियों को, परम्पराभंजक स्त्रियों को और जाति-व्यवस्था-विरोधियों, विशेषकर दलितों को क्रूरतम सज़ाएं दी जा रही हैं।

बर्बर "पंच-परमेश्वर" शायद यह नहीं जानते कि नृशंसतम अत्याचारों से भी शान्त होने के बजाए विद्रोहों की ज्वाला और अधिक भड़क जाया करती है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृति गौरव की दुहाई देने वालों को चाहिए कि प्रेम की सभी पुरातन कथाओं को जलाकर राख कर दें और ऋषियों-मुनियों-देवताओं-राजाओं की उन सभी व्याभिचार-गाथाओं, रास-लीलाओं, गणिकाओं-वारांगनाओं के वृतान्तों, नियोग-प्रथा और रनिवासों के अंधेरों, स्त्री पर दांव लगाने वाली द्यूत क्रीड़ाओं, भरे दरबार के चीरहरणों, कंचुल-नृत्यों और अनन्त विलासिता की स्मृतियों को उनकी "धर्मसम्मत-न्यायसम्मत" व्याख्याओं सहित कालपात्र में सुरक्षित कर लें। वैसे भी, हमारे समाज में झीने पर्दे के पीछे होने वाले

सभी अनाचार-व्याभिचार स्वीकार्य होते हैं। अस्वीकार्य है तो सिर्फ वह प्रेम जो जाति-धर्म के बन्धनों को नहीं मानता। भारत में आज भी प्रेम करना एक कठिन, दुर्दम्य साहस की मांग करता है। यह कबूतरदिल लोगों का काम नहीं। क्योंकि जो प्रेम करेंगे, वे मारे जायेंगे...!!

☆

पिछले दिनों पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शामली तहसील के अलीपुर गांव की पंचायत में जुटे बड़े-बुजुर्गों ने 17 वर्षीय विशाल और 15 वर्षीय निधि उर्फ सोनू को फांसी की सजा सुनाई। गांव वालों की मदद से सजा को अंजाम दिया विशाल के भाई और सोनू के पिता ने। इन दो किशोरों का अपराध था कि जाति बिरादरी और गांव की मर्यादा को तोड़कर उन्होंने प्यार किया था। विशाल ब्राह्मण था जबकि सोनू जाट परिवार की लड़की थी।

उल्लेखनीय है कि अकेले मुजफ्फरनगर जिले में हाल के वर्षों में इस तरह की करीब दर्जन भर घटनाएं घट चुकी हैं। पहली घटना 80 के दशक में थाना भवन क्षेत्र में घटी। दूसरी घटना अगस्त 1993 में कांधला के खंदरावली गांव में घटी, जब भरी पंचायत में सतीश और उसकी प्रेमिका संगीता की गर्दन काटकर हत्या कर दी गयी। तीसरी घटना अभी हाल ही में नगर कोतवाली के खालापार क्षेत्र में हुई जहां एक मुस्लिम प्रेमी जोड़े की हत्या उन्हीं के बस्ती के लोगों ने कर दी। चौथी घटना अलीपुर कांड के बाद की है। हुकारी गांव की एक लड़की को गांव के तीन लड़कों से प्रेम के आरोप में फांसी की सजा सुनाई गयी लड़कों को तो सिर्फ अर्थदण्ड वसूल कर छोड़ दिया गया लेकिन लड़की को पत्थर-डंडे बरसा कर मार डाला गया।

प्रेम-विरोधी इस बर्बर स्वेच्छाचारी मुहिम के पीछे सहस्त्राब्दियों पुरानी निरंकुश मानवद्रोही जाति-व्यवस्था, स्त्री-विरोधी पुरुष-वर्चस्ववाद, किसानी समाज के जनवाद-विरोधी मूल्य और "तालिबानी" हिन्दुत्व के मूल्य इस कदर गुंथे-बुने हैं कि उनके धागों-रेशों को अलगा पाना असंभवप्रय लगता है।

हमारे देश की पूंजीवादी चुनावी राजनीति किस तरह गांव के स्थानीय चौधरियों द्वारा पोषित-संरक्षित पुरातन-बर्बर निरंकुशता से जुड़ी हुई है, इसका प्रमाण इस तथ्य से मिल जाता है कि मुजफ्फरनगर में साम्प्रदायिक तनाव की खबरें मिलते ही संसद में गरज पड़ने वाले मुलायम सिंह यादव इस बात पर कुछ नहीं बोले। 'जाटलैण्ड' के अमेरिका रिटर्न छोटे चौधरी, अजित सिंह भी चुप्पी साधे रहे। इस मसले पर कुछ भी बोलना पंचायतों के चौधरियों का कोपभाजन बनना होता और अपना वोटबैंक हाथ से निकलने का जोखिम भला सामाजिक न्याय और किसान हितों के ये मसीहा लोग क्यों उठाते? मुजफ्फरनगर धनी किसानों के सिरमौर नेता महेन्द्र सिंह टिकैत का गृहजनपद है। खैर, वे तो स्वयं ही जाति-बिरादरी और पुरानी परम्पराओं के जबर्दस्त पैरोकार हैं। वे गांवों की उन पुरानी पंचायतों के प्रबल समर्थक हैं और ये पंचायतें ही उनका आधार हैं। पुरानी

व्यवस्थाओं और रीति-रिवाज़ों की दुहाई देना इन पंचायतों की सबसे बड़ी पूंजी है।

सोचने की बात यह भी है कि विशाल और सोनू को फांसी चढ़ाने की घटना देश के किसी पिछड़े इलाके में नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश के सबसे सम्पन्न जनपद में घटी है जो प्रति व्यक्ति औसत आय के मामले में पंजाब से भी आगे है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के विस्तार में गये बग़ैर, यहां सोचने के लिए मात्र इस मुद्दे को रेखांकित कर देना ज़रूरी है कि पूंजीवादी विकासजन्य समृद्धि के साथ ही सामाजिक जीवन में जनवाद, आज़ादी, मानववाद और वैयक्तिकता के मूल्यों की स्थापना हर हाल में अपरिहार्य नहीं होती। भारतीय समाज का पूंजीवाद सुधार-पुनर्जागरण क्रान्ति की नैसर्गिक प्रक्रिया से नहीं बल्कि औपनिवेशिक सामाजिक संरचना की कोख से जन्मा है और साम्राज्यवाद की सदी के अंतिम दशकों में अत्यन्त मंथर प्रक्रिया से पला-बढ़ा है। यह जनवाद के सकरात्मक मूल्यों से सर्वथा रिक्त है और प्राक्-पूंजीवादी समाज के तमाम निरंकुश स्वेच्छाचारी मूल्यों-मान्यताओं को इसने ज्यों का त्यों अपना लिया है। दूसरी ओर वित्तीय पूंजी के विश्वव्यापी वर्चस्व के दौर में फासीवाद सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों से भी इनका पूरा सहमेल है। यह एक व्यापक आम पृष्ठभूमि है जो महानगरीय संस्कृति की निरंकुश स्वेच्छाचारिता के पीछे भी मौजूद है और कुलकों-फार्मरों के वर्चस्व वाले मुजफ्फरनगर में प्रेमी जोड़े की हत्या जैसी घटना के पीछे भी।

•

किसानी अर्थव्यवस्था वाले ग्रामीण इलाकों में जो बर्बर निरंकुश स्वेच्छाचारी जातिवादी और नारी-विरोधी मूल्य सदियों से जड़े जमाये रहे हैं, उन्हें पूंजी की सत्ता ने एक नया आधार और नई मजबूती दी है। हालांकि इस सच्चाई के इस दूसरे पहलू की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि दलितों और स्त्रियों में तथा विशेषकर युवा पीढ़ी में विद्रोह की भावना भी इधर लगातार मुखर और बलवती हुई है।

भू-स्वामित्व निजी स्वामित्व का पुरातनतम रूप है और एशियाई समाज में – विशेषकर भारत में भूस्वामित्व की व्यवस्था में बदलाव की गति अतिमंथर रही है इसीलिए उत्तर भारत के गांवों में पूंजी के वर्चस्व के साथ आई नई निरंकुशता के साथ ही पुरानी निरंकुशता के सभी रूप एकदम घुल-मिल गये हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा के किसानी समाज में रूढ़ियों-परम्पराओं के प्रति जो आग्रह मौजूद है, वह रूस के मुझिकों और कजाकिस्तान के कज्जाकों से किसी मायने में कम नहीं है। सिख धर्म और धर्म सुधार आन्दोलनों के प्रभाव में पंजाब का किसान समाज जातिगत कट्टरता से एक हद तक (एक हद तक ही) मुक्त हुआ, पर राष्ट्रीय आन्दोलन, आर्य समाज और स्वामी रामतीर्थ आदि के प्रभाव के बावजूद, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाति-बिरादरी की रूढ़िगत कट्टरता में कोई फर्क नहीं पड़ा। जाटों जैसी किसान जातियां अतीत में भले ही शूद्र मानी जाती रही हों, पूंजी की ताकत से लैस होकर आज वे अपनी "जातिगत शुद्धता" के प्रति सवर्णों से भी अधिक आग्रही दीखती हैं और दलित-उत्पीड़न के मामले में भी वे देश के किसी भी हिस्से के सवर्णों से पीछे नहीं हैं। यही नहीं, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गुज्जर और मुसलमान भी जातिगत संकीर्णता के इन मूल्यों को आत्मसात् किये हुए दीखते हैं।

सोचने की बात यह भी है कि भूमण्डलीकरण का विरोध करते हुए "स्वदेशी" का नारा बुलन्द करने वाले किस्सिम-किस्सिम के गांधीवादी, सर्वोदयी, समाजवादी और कुछ दिग्भ्रमित वामपंथी गांवों में जिस परम्परागत पंचायती व्यवस्था को पुनर्जीवित करने की बात कर रहे हैं, उसी पंचायती व्यवस्था के सूत्रधार कहीं सोनू और विशाल को फांसी की सज़ा सुना रहे हैं तो कहीं किसी दलित स्त्री को निर्वस्त्र करके गांव की सड़कों पर घुमा रहे हैं। बर्बर जातिवादी मूल्यों पर आधारित और ग्रामीण नवधनिकों (जिनमें जाट, कुर्मी, यादव, मराठा, रेड्डी, कम्मा आदि मध्य जातियों के धनी किसान सवर्ण भूस्वामियों से कम प्रभावी नहीं है) के वर्चस्व वाली ये पंचायतें "स्वदेशी राज" की कौन-सी बानगी पेश करेंगी, यह बताने की ज़रूरत नहीं है! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि चाहे वाजपेयी की केन्द्र सरकार हो या राजस्थान-मध्यप्रदेश की कांग्रेसी सरकारें, सभी पंचायती राज और स्थानीय स्वशासन के नाम पर गांवों में इन्हीं बर्बर-निरंकुश "पंच-परमेश्वरों" की सत्ता को मजबूत बनाने का काम कर रही हैं।

•

यह महज इत्तफ़ाक नहीं है कि इधर कुछ दिनों से, देश के विभिन्न हिस्सों से जाति-धर्म का बंधन तोड़कर प्रेम करने के "अपराध" और "दण्ड" की खबरें लगातार समाचार-पत्रों की सुर्खियां बन रही हैं। मुजफ्फरनगर की ही एक और घटना अभी कुछ दिनों पहले अखबारों में छपी थी। सिसौनिया गांव की 17 वर्षीय सीमा और उन्नीस वर्षीय अमित ने अन्तर्जातीय प्रेम विवाह कर लिया। सीमा सैनी जाति की थी और अमित बनिया परिवार में पैदा हुआ था। सीमा के परिवार वालों ने धोखे से बुलाकर उसकी हत्या कर दी। इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे अमित का कहना है कि देर-सबेर उसकी भी हत्या कर दी जायेगी। पुलिस-प्रशासन से उसे कोई भी मदद नहीं मिल रही है।

विगत 15 अगस्त को जब सारा देश आजादी का जश्न मना रहा था, कुशीनगर(उ.प्र) के देवीपुर गांव में अतिपिछड़ी जाति के एक गरीब परिवार की 15 वर्षीय लड़की की पीट-पीट कर हत्या की जा रही थी। आरोप यह था कि उसने एक अवैध बच्चे को जन्म देकर खेत में फेंक दिया था। मृत्यु के बाद पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चला कि पंचायती बर्बरता की शिकार वह लड़की कभी गर्भवती हुई ही नहीं थी।

पिछड़े-गरीब कुशीनगर के दूसरे छोर पर शिक्षित-समृद्ध गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में हिन्दुत्व के ठेकेदारों ने भारती बारोट को एक मुसलमान से प्रेम करने और विवाह करने के "गुनाह" में इतना प्रताड़ित किया कि उसने हिन्दू महासभा के दफ्तर में ही खुदकुशी कर डाली।

इस तरह की घटनाओं में लगातार बढ़ोत्तरी सिर्फ़ यही नहीं बताती कि जाति-व्यवस्था और धर्म के स्वयंभू ठेकेदारों की बर्बरता लगातार बढ़ती जा रही है। साथ ही, वह यह भी बताती है कि प्रबुद्ध और बहादुर युवाओं का एक हिस्सा अन्याय के विरुद्ध उठ खड़े होने के निहितार्थों को आज व्यापक अर्थों में जान-समझ रहा है और राजनीतिक व्यवस्था के साथ ही वह अन्यायी-बर्बर सामाजिक व्यवस्था और मूल्यों के विरुद्ध भी साहसिक विद्रोही की पहल कर रहा है तथा इसकी कीमत चुका रहा है।

बर्बर स्वेच्छाचारिता के सड़ांध से बजबजाते भारतीय समाज में प्रेम करने की आज़ादी के

(शेष पृष्ठ 33 पर)

दान्को का जलता हुआ हृदय

मक्सिम गोर्की

(इस अंक में हम पाठक साथियों के लिए गोर्की की विश्वप्रसिद्ध कहानी बुढ़िया इज़रगिल का एक अंश दे रहे हैं। यह कहानी लोककथाओं के एक नायक दान्को के बारे में है जिसकी कहानी बुढ़िया इज़रगिल ने गोर्की को सुनायी थी।

जब कौमें अन्धेरे में खो जाती है, राष्ट्र गुलामी के रसातल में डूब जात हैं तो ऐसे समय में मेहनतकश जनता के बहादुर सपूत आगे आते हैं और अपना दिल चीरकर उसकी रोशनी से राहें रोशन करते हैं। दान्को उन पराक्रमी युवाओं का प्रतीक है जो न केवल राहों को खोजते हैं बल्कि राहें बनाते हैं और इतिहास के सर्पिल संघर्ष-पथ से जनता के आगे बढ़ने में हरावल की भूमिका निभाते हैं।

पिछली सदी का अवसान हार और गतिरोध में हुआ। लेकिन पिछली सदी में सिर्फ हारें ही नहीं मिली हैं संघर्षों के अनुभव भी मिले हैं। ये बहुमूल्य अनुभव नयी सदी में हमारे संघर्षों के साथ रहेंगे ही। लेकिन नयी सदी में मुक्ति की राह निकाली जा सके, इसक लिए जरूरत है कुछ दान्को की। जरूरत है ऐसे युवाओं की जो अपना दिल चीरकर राहें रोशन कर सकें।

दान्को की यह कहानी हमारे युवा साथी सुकून से नहीं पढ़ सकेंगे, वे बेचैन हो उठेंगे और यह बेचैनी निश्चय ही उन्हें दान्को क रास्ते पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करेगी। – सम्पादक)

समुद्र की ओर से एक बादल उठा – खूब घना और काला, पर्वत-श्रृंखला की भाँति कटावदार। यह श्रृंखला स्तेपी की ओर बढ़ रही थी। उसके छोर से बादलों के गोले टूटकर अलग हो जाते, तेजी से उससे आगे बढ़ते और एक के बाद एक सितारे की रोशनी छीनते जाते। समुद्र फिर से गरजने लगा था। हमसे कुछ ही दूर अंगूरों के बगीचे से चुम्बन, फुसफुसाहट और गहरी सांसें सुनाई दे रही थीं। स्तेपी में कोई कुत्ता रो रहा था...हवा में एक अजीब गंध भरी थी, जो नथुनों और रगों में एक गुदगुदी-सी पैदा करती थी। बादलों की ढेरों, घनी परछाइयां धरती पर रेंग रही थी... कभी वे धुंधली पड़ जातीं और कभी खूब साफ दिखाई देने लगतीं..चांद अब धुंधली दूधिया आभा का एक गोल धब्बा मात्र रह गया था, जिसे बादल का एक छोटा-सा भूरा टुकड़ा कभी-कभी पूर्णतया ओझल कर देता था। स्तेपी-विस्तार में, जो मानो अपने आंचल में कुछ छिपाकर अब काली और भयानक हो उठा था, खूब दूर छोटी-छोटी, नीली लपटें थरथरा रही थीं। वे इस तरह चमक उठतीं जैसे लोग किसी चीज की खोज में स्तेपी में घूमते हुए दियासलाइयां जलाते हों, जिन्हें हवा तुरंत बुझा देती हो। बहुत ही अजीब थी ये नीली रोशनियां, परी-कथा सी झलक दिखाती-सी।

"तुम ये चिंगारियां देख रहे हो न ?" इजरगिल ने पूछा।

"वे छोटी-छोटी नीली रोशनियां ?" स्तेपी की ओर इशारा करते हुए मैंने जानना चाहा।

"नीली ? हां, ये वही हैं.., सो वे अब भी उड़ती रहती हैं ! ठीक...मैं तो अब उन्हें देख नहीं पाती। बहुत कुछ नहीं दिखाई देता अब मुझे।"

"कहां से निकल रही हैं ये ?" मैंने बुढ़िया से पूछा।

उनके बारे में पहले भी मैं कुछ सुन चुका था, लेकिन बुढ़िया इजरगिल क्या कहेगी, मैं यह सुनना चाहता था।

"ये दान्को के जलते दिल से निकल रही हैं। बहुत दिन पहले एक हृदय मशाल की भाँति जल उठा था...उसी से अब ये चिंगारियां निकलती हैं। मैं तुम्हें उसकी कहानी सुनाऊंगी. ..यह भी बहुत पुरानी कथा है...पुराना, सब कुछ पुराना है ! देख रहे हो न, कितना कुछ था पुराने दिनों में ?...आजकल तो कुछ भी नहीं है – न वे आदमी हैं, न वे कारनामे हैं, न वे किस्से हैं – कुछ भी तो ऐसा नहीं है जिसकी उन पुराने दिनों से तुलना की जा सके. ..ऐसा क्यों है ?...बताओ तो ! नहीं बता सकते...क्या जानते हो तुम ? नयी पीढ़ी के तुम सभी लोग क्या जानते हो ? ओह-हो !. ..अगर तुम अतीत की खोजबीन करो, तो जीवन की सभी पहेलियों का जवाब मिल जाये...लेकिन तुम लोग ऐसा नहीं करते और इसीलिए जीने का ढंग नहीं जानते...क्या मैं जीवन का रंग-ढंग नहीं देखती हूं! बेशक मेरी आंखें कमजोर हो गई हैं, फिर भी सब कुछ देखती हूं! और मैं देखती हूं कि जीने के बजाय लोग अपना समूचा जीवन जीने की तैयारी करने में गंवा देते हैं। और जब इतना सारा समय हाथ से निकल जाने के बाद वे अपने को लुटा हुआ देखते हैं, तो भाग्य को कोसने लगते हैं। भाग्य भला इसमें क्या कर सकता है ? हर आदमी खुद ही अपना भाग्य है! आज दुनिया में हर तरह के लोग हैं, लेकिन मुझे उनमें शक्तिशाली नजर नहीं आते ! वे कहां गये ?...और सुन्दर लोग भी दिन-दिन कम होते जा रहे हैं।"

बुढ़िया रुककर इस चिंता में डूब गयी कि शक्तिशाली और सुन्दर लोग कहां गये। वह यह सोच रही थी और उसकी आंखें स्तेपी के अंधकार में एकटक जमी थीं, मानो वे वहां इस प्रश्न के उत्तर की खोज कर रही हो।

उसके कहानी शुरू करने तक मैं चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा। मुझे डर था कि मेरे कुछ कहने से कहीं उसका धयान न भटक जाये।

और उसने कहानी सुनानी शुरू कर दी।

3

"बहुत, बहुत पहले एक जाति थी। वह जिस जगह रहती थी उसके तीन ओर अगम्य जंगल छाये थे और चौथी ओर घास के मैदान फैले थे। इस जाति के लोग तगड़े, बहादुर और खुशमिजाज थे। लेकिन बुरे दिनों ने उन्हें आ घेरा। अन्य जातियों का वहां धावा हुआ और उन्होंने उनको जंगल की गहराइयों में खदेड़ दिया। जंगल अंधकार में डूबा हुआ और दलदली था। कारण कि वह बहुत पुराना था और पेड़ों की शाखाएं ऐसे कसकर एक दूसरी के साथ गुंथी थी कि आकाश की शक्ल तक नजर नहीं आती थी और घनी हरियाली को चीरकर दलदलतक पहुंचने में सूरज की किरणों की सारी शक्ति चुक जाती थी। लेकिन जब वे उस पानी तक पहुंचती थी, तो विषैली गंध उठने लगती थी, जिससे लोग मरने लगते थे।

"तब उस जाति की स्त्रियां और बच्चे रोने-पीटने लगे और पुरुष चिंता में घुलने लगे। जंगल से निकल जाने के सिवा कोई चारा न रहा, लेकिन बाहर निकलने के दो ही रास्ते थे – एक पीछे की ओर, जहां सशक्त और जानी दुश्मन थे, दूसरा आगे की ओर, जहां दैत्याकार पेड़ उनका रास्ता रोके खड़े थे, जिनकी मजबूत शाखाएं एक-दूसरी के साथ मजबूती से गुंथी थीं और जिनकी टेढ़ी-मेढ़ी तथा गांठ-गठीली जड़ें दलदली कीचड़ में बहुत गहरी चली गयी थीं। ये पत्थरनुमा पेड़ दिन के धूसर अंधेरे में निर्वाक और निश्चल खड़े रहते और रात को जब अलाव जलते, तो लोगों के गिर्द अपना घेर और भी कस लेते तथा स्तेपी की उन्मुक्त गोद के अभ्यस्त लोग दिन-रात अंधेरे की दीवारों में बंद रहते जो मानो उन्हें कुचलने की कसम खाये बैठी थीं। इस सबसे भी भयानक थी हवा, जो पेड़ों की चोटियों पर से सनसनाती और फुफकारती हुई गुजरती और ऐसा मालूम होता मानो समूचा जंगल उन लोगों के लिए किसी भयंकर शोक-गीत से गूंज उठा हो। वे एक बहादुर जाति के लोग थे और मृत्यु पर्यन्त उन लोगों से लड़ते, जिन्होंने उन्हें एक बार हरा दिया था। लेकिन वे लड़ाइयों में अपने को मरने नहीं दे सकते थे, क्योंकि उनके अपने जीवन-आदर्श थे और अगर वे मर जाते तो उनके जीवन-आदर्श भी उनके साथ ही नष्ट हो जाते। इसीलिए वे दलदल की जहरीली गंध और जंगल के घुटे-घुटे शोर वाली लम्बी रातों में बैठे हुए अपने भाग्य के बारे में सोचते रहते थे। वे सोच में डूबे बैठे होते, आग की लपटों की परछाइयां उनके इर्द-गिर्द मूक नृत्य में उछलती-कूदती और उन सबको ऐसा लगता कि ये निरी परछाइयां ही नृत्य नहीं कर रही हैं, बल्कि जंगल और दलदल की प्रेतात्माएं अपनी विजय का उत्सव मना रही हैं...लोग ऐसे बैठे-बैठे सोचते रहते। मगर परेशान करने वाले विचार आदमी को जितना निचोड़ते हैं, उतना और कोई चीज नहीं, न श्रम, न स्त्रियां। लोग चिंता से दुबलाने लगे...उनके हृदयों में भय उत्पन्न हुआ और उसने उनकी मजबूत बाहों को जकड़ लिया। विषैली गंध के कारण मरे लोगों के शवों पर स्त्रियों का विलाप और भय से निःशक्त हुए जीवितों पर उनका रोना-कलपना आतंक पैदा करता। और इस तरह जंगल में कायरतापूर्ण शब्द भनभनाने लगे – पहले धीमे और दबे-दबे और फिर निरंतर अधिक खुलकर...अंत में वे दुश्मन के पास जाकर उसे अपनी आजादी भेंट करने की सोचने लगे। मृत्यु के भय ने उन्हें इतना डरा दिया था कि हर कोई गुलाम की भांति जीवन बिताने को तैयार हो गया था...लेकिन तभी दान्को आया और उसने उन सबकी रक्षा की।

"दान्को उन्हीं में से एक सुन्दर जवान था। सुन्दर लोग हमेशा साहसी होते हैं। और उसने अपने साथियों से कहा –

"केवल सोचने से राह की चट्टानें नहीं हट जातीं। जो कुछ करते नहीं, वे कुछ पाते नहीं। सोच और परेशानी में हम अपनी शक्तियां क्यों बरबाद कर रहे हैं ? उठो, जंगल को चीरते हुए हम आगे बढ़ चलें – कहीं न कहीं तो इसका अंत होगा ही – हर चीज का अंत होता है! चलो, आगे बढ़ें!"

"लोगों की आंखें उसकी ओर उठीं और उन्होंने देखा कि वह उनमें सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि उसकी आंखें शक्ति और जीवन से दमक रही थीं।"

"हमारी अगुवाई करो!" उन्होंने कहा।

"और उसने उनकी अगुवाई की..."

"सो दान्को उन्हें ले चला। वे उत्साह से उसके साथ चले, क्योंकि उसमें उनका विश्वास था। रास्ता बड़ा विकट था! अंधेरा था, कदम-कदम पर दलदल अपना सड़ा हुआ लालची मुंह बाए थी। वह लोगों को निगल जाती थी और पेड़ मजबूत दीवारों की भांति राह रोक लेते थे। उनकी शाखाएं कसकर एक-दूसरी के साथ गुंथी थीं और सांपों की भांति हर तरफ फैली हुई थी उनकी जड़ें। हर कदम आगे बढ़ने के लिए उन्हें अपने रक्त और पसीने से कीमत चुकानी पड़ती। देर तक वे चलते रहे...जंगल अधिक घना होता गया और लोगों की शक्ति क्षीण पड़ती गयी! और तब वे दान्को के खिलाफ भुनभुनाने लगे। कहने लगे कि वह निरा लड़का और अनुभवहीन है और जाने हमें कहां ले आया है। लेकिन वह उनके आगे-आगे चलता रहा। उसके मन में किसी तरह की शंका और चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी।

"लेकिन एक दिन तूफान ने जंगल को घेर लिया और पेड़ों में आतंकपूर्ण सनसनाहट दौड़ गयी। और तब इतना घना अंधेरा छा गया कि लगता था जैसे वे तमाम रातें एक साथ वहां जमा हो गयी हों जो जंगल के जन्म से लेकर अब तक बीती थीं। और वे छोटे-छोटे लोग भीमाकार पेड़ों तथा तूफानी गरज के बीच चलते रहे। वे चलते जाते, भीमाकार पेड़ चरचराते, भयंकर गीत-से गाते और पेड़ों की फुनगियों के ऊपर बिजली चमकती, क्षण भर के लिए एक ठंडी नीली रोशनी जंगल को जगमगा देती और फिर उतनी ही तेजी से गायब हो जाती। लोगों के हृदय भय से कांप उठते। बिजली की ठंडी रोशनी में पेड़ जीते-जागते मालूम होते – अपनी गठीली लम्बी बाहों को फैलाते और उन्हें गूंथकर घना जाल बिछाते – से, ताकि ये लोग, जो अंधकार की कैद से छूटने की कोशिश कर रहे थे, उसमें फंसकर रह जायें। शाखाओं के घटाटोप में से भी कोई ठंडी, काली और भयानक चीज उनकी ओर घूर रही थी। बड़ा ही चौड़ा मार्ग था वह। और लोग, जो थककर चूर-चूर हो गये थे, हिम्मत हार बैठे। लेकिन शर्म के मारे वे अपनी कमजोरी स्वीकार न करते और अपना गुस्सा तथा खीझ दान्को पर उतारते जो उनके आगे-आगे चल रहा था। वे उस पर आरोप लगाते कि वह उनकी अगुवाई करने की योग्यता नहीं रखता तो ऐसी हालत थी!

"वे रुक गये और उस कांपते हुए अंधेरे और जंगल की विजयोन्मत्त गरज के बीच थकान तथा गुस्से से बेहाल उन लोगों ने दान्को को भला-बुरा कहना शुरू किया।

"तुम कमीने और दुष्ट हो! तुम्हीं ने हमें इस मुसीबत में फंसाया है,' वे कह उठे, 'इसके लिए तुम्हें अब अपनी जान से हाथ धोने पड़ेंगे।'

"दान्को उनके सामने छाती तानकर खड़ा हो गया और चिल्लाकर बोला–

'''तुमने कहा – ''हमारी अगुवाई करो।'' और मैंने तुम्हारी अगुवाई की। मुझमें तुम्हारी अगुवाई करने की हिम्मत है और इसीलिए मैंने इसका बीड़ा उठाया। लेकिन तुम ? तुमने अपनी मदद के लिए क्या किया ? चलते ही रहे और अधिक लम्बे रास्ते के लिए अपनी शक्ति सुरक्षित नहीं रख पाये। भेड़ों के रेवड़ की भांति तुम केवल चलते ही रहे।'

उसके इन शब्दों ने उन्हें और भी ज्यादा भड़का दिया।

''हम तुम्हारी जान ले लेंगें ! तुम्हारी जान ले लेंगे।'' वे चीख उठे।

''जंगल गूंज रहा था, गूंज रहा था, उनकी चीखों को प्रतिध्वनित कर रहा था। बिजली अंधेरे की चिंदियां बिखेर रही थी। दान्को की नजर उन पर टिकी थी, जिनके लिए उसने इतना कष्ट उठाया था और उसने देखा कि वे दरिन्दे बने हुए हैं। एक अच्छी-खासी भीड़ उसे घेरे थी, लेकिन उनके चेहरों पर सद्भावना का कोई चिन्ह नजर नहीं आ रहा था और उनसे किसी तरह की दया की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। तब उसके हृदय में गुस्से की एक आग-सी धधकी, लेकिन लोगों के प्रति दयाभाव ने उसे शान्त कर दिया। वह लोगों को चाहता था और उसे डर था कि उसके बिना वे नष्ट हो जायेंगे। उन्हें बचाने और सुगम पथ पर ले जाने की एक महती आकांक्षा की ज्योति उसके हृदय में जल उठी और इस महान ज्योति की तेज लपटें उसकी आंखों में नाचने लगीं...और यह देखकर लोगों ने सोचा कि वह आपे से बाहर हो गया है और इसी कारण उसकी आंखों में आग की प्रखर लौ थिरक रही है। वे भेड़ियों की भांति चौकस हो गये – इस आशंका से कि वह अब उन पर टूट पड़ेगा और उसके इर्द-गिर्द और भी निकट आ गये ताकि उसको दबोच लें और मार डालें। उसने उनके इस इरादे को भांप लिया, जिससे उसके हृदय की ज्योति और भी प्रखर हो उठी, क्योंकि उनके इस विचार से उसका दिल तड़प उठा था।

''और जंगल अपना शोकपूर्ण गीत गाता जा रहा था, बादल गरजते जा रहे थे और पानी जोर से बरसता जा रहा था...

''लोगों के लिए मैं क्या करूं ?'' दान्को की आवाज बादलों की गरज को बेधती हुई गूंज उठी।

''और सहसा उसने अपना वक्ष चीर डाला, अपने हृदय को नोचकर बाहर निकाला और उसे अपने सिर से ऊंचा उठा दिया।

''वह सूरज की भांति दमक रहा था, उसका प्रकाश सूरज से भी ज्यादा तेज था। जंगल की गरज शांत हो गयी और इस मशाल का – मानव जाति के प्रति महान प्रेम की इस मशाल का-आलोक फैल चला। प्रकाश से अंधकार के पांव उखड़ गये और वह कांपता-थरथराता हुआ दलदल के सड़े-गले गर्त में कूदकर जंगल की अतल गहराइयों में समा गया। और लोग आश्चर्य के मारे बुत बने वहीं खड़े रह गये।

'''बढ़ चलो!' दान्को ने चिल्लाकर कहा और अपने जलते हुए हृदय को खूब ऊंचा उठाकर लोगों का पथ जगमगाता हुआ तेजी से आगे बढ़ चला।

''मंत्रमुग्ध से लोग उसके पीछे हो लिये। तब जंगल एक बार फिर भुनभुनाने और अपनी फुनगियों को अचरज से हिलाने लगा। लेकिन उसकी यह भुनभुनाहट दौड़ते हुए लोगों के पांवों की आवाज में खो गयी। लोग अब साहस और तेजी के साथ भागते हुए आगे बढ़ रहे थे – जलते हुए हृदय का अद्भुत आलोक उन्हें अनुप्राणित कर रहा था। लोग मरते तो अब भी थे, लेकिन आंसुओं और शिकवे-शिकायत के बिना। दान्को सबसे आगे बढ़ा जा रहा था और उसका हृदय दहकता ही जा रहा था,दहकता ही जा रहा था!

''सहसा जंगल ने उनके लिए रास्ता बना दिया, रास्ता बना दिया और खुद पीछे रह गया – मूक और घना। और दान्को तथा वे सभी लोग सूरज की धूप और बारिश से धुली हवा के सागर मे हिलोरें लेने लगे। तूफान अब उनके पीछे, जंगल के ऊपर था, जबकि यहां सूरज सोना बिखेर रहा था, स्तेपी राहत की सांस ले रही थी, वर्षा के मोतियों में घास चमक रही थी और नदी सोने की तरह चमचमा रही थी...सांझ का समय था और छिपते हुए सूरज की किरणों में नदी वैसी ही लाल लग रही थी जैसी लाल थी गर्म खून की वह धारा जो दान्को की फटी छाती से बह रही थी।

''वीर दान्को ने अन्तहीन स्तेपी के विस्तार पर नज़र डाली, स्वाधीन धरती पर आनन्द से छलछलाती नजर, और गर्व से हंसा। फिर जमीन पर गिरा और मर गया।

''लोग तो खुशी में मस्त और आशा से ओतप्रोत थे। वे उसे मरते हुए नहीं देख पाये और न यह कि उसका वीर हृदय उसके मृत शरीर के पास पड़ा अभी तक जल रहा था। सिर्फ एक सतर्क आदमी की ही दृष्टि उसकी ओर गयी और उसने डरकर उस गर्वीले हृदय को रौंद डाला...चिंगारियों की एक फुहार-सी उसमें से निकली और वह बुझ गया...''

''यही वजह है कि स्तेपी में तूफान के पहले नीली चिंगारियां दिखाई देती हैं।''

'आह्वान' यहां से प्राप्त कर

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाज़ार, **गोरखपुर** ■विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, **गोरखपुर** ■ जनचेतना, डी-68, निरालानगर, **लखनऊ**-226020 ■राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ■ विमल कुमार, बुक स्टाल, नीलगिरी काम्प्लेक्स के सामने, इंदिरानगर, **लखनऊ** ■कृष्णगोविन्द सिंह, एस.एच 1/49, ए-24 (प्रथम तल), जयनगर कालोनी, गिलट बाज़ार, **वाराणसी**■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी** ■शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूध नाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ** ■ राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** ■ डी.के.सचान, एस.एच-272, शास्त्रीनगर, **गाज़ियाबाद**, **उत्तरांचल** ■ विजय कुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास-विकास, **रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)** ■ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, **पन्तनगर (ऊधमसिंहनगर)** ■ अविनाश श्रीवास्तव, 87, पन्त भवन, **पन्त नगर विश्वविद्यालय, (ऊधमसिंहनगर)** ■ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, **रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर)** ■ प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, **पन्तनगर** ■.

दिल्ली ■ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज-1, **दिल्ली** ■ अभिनव सिन्हा, बी 7/45, सेक्टर-18, रोहिणी, **दिल्ली** ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस** ■ पत्रिका मंडप, कला संकाय, **दिल्ली विश्वविद्यालय** ■ नई किरण पुस्तक भण्डार, 56, हरकेश नगर, **ओखला, दिल्ली**

हरियाणा ■ नरभिंदर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, **हरियाणा, ग्रा./पो.**-संतनगर, जिला-**सिरसा**, पंकज, प्लाट नं-33, सेक्टर 15, **सोनीपत**

बिहार ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ■समकालीन प्रकाशन (प्रा. लि.), पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना**

बंगाल ■बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ■जर्नादन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ सी.पी. सरोज, सनराइज स्कूल, **छोटा** अदलपुर, सेमलबाड़ी, **दार्जीलिंग** ■राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधान नगर, **सिलीगुड़ी**

मध्य प्रदेश ■चिंचोलकर बुक हाउस बस स्टैण्ड, जगदलपुर, **बस्तर** ■**विकल्प सांस्कृतिक** मोर्चा, 22 स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसेल चौक, जबलपुर

महाराष्ट्र ■पीपुल्स बुक हाउस, 15 कावसजी पटेल स्ट्रीट, **फोर्ट, मुम्बई**

राजस्थान ■कविता, द्वारा योगेश कुमार, 94, मोहननगर (त्रिवेणीनगर), गोपालपुरा **बाईपास**, **जयपुर** ■ बुक्स एण्ड न्यूज मार्ट, एम.आई.रोड, **जयपुर**

असम ■शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चपाली, **तिनसुकिया**

नेपाल ■विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवण पथ, **बुटवल, रुपन्देई**

'पैदा हुई पुलिस तो इबलीस ने कहा लो आज हम भी साहिबे औलाद हो गये'

समीर

शैतान खुश हुआ कि पुत्र का जन्म हुआ! सन 1861 में भारतीय पुलिस के जन्म पर एक शायर ने कभी यह तुक मिलाया था। 1947 के पहले अंग्रेजी राज के पुलिस ने कितने लोगों को लठियाया होगा, संगीनें भोंकी होंगी, 'एनकाउंटर' किये होंगे "दो औंस की सीसे की गोली" न जाने कितने शहरों में, न जाने कितने जुलूसों-सभाओं में न जाने कितने शहरों में, न जाने कितने मनुष्यों के गर्म सीनों में मृत्यु बनकर प्रवेश करती रही होगी (संदर्भ: *(उदय प्रकाश की कविता – 'राज्यसत्ता')* आज इसका हिसाब लगाने की जरूरत नहीं। इतिहास से सबक तो तब निकाले जाते हैं, जब वर्तमान में उदाहरण नहीं मिलते। यहां तो पुलिस की शैतानी हरकतों की नयी-नयी मिसालें हर रोज सामने आती रहती हैं -- ऐसी मिसालें कि खुद इबलीस भी शायद शरमा जाये।

एक ताजा मिसाल देखिये। पिछले 18 अगस्त को फरीदाबाद से निकलने वाले एक दैनिक *मज़दूर मांचा* के सम्पादक सतीश कुमार को स्थानीय पुलिस अलस्सुबह घर से सिर्फ इसलिए उठा ले गयी कि उनके अखबार ने जिले के एस.पी. रणवीर शर्मा के भ्रष्टाचार को उजागर किया था। सतीश कुमार पर 'हरियाणा अरबन डेवलपमेंट अथारिटी' (हुडा) के एक अधिकारी को डरा-धमकाकर अपने अखबार के लिए विज्ञापन जुटाने व अखबार की गलत प्रसार संख्या दिखाने का आरोप लगाकर आई. पी.सी. की धाराएं 420, 396 आदि ठोंककर जेल के भीतर ठूंस दिया गया। गिरफ्तारी के बाद 'हुडा' के उक्त अधिकारी पर दबाव डालकर पुलिस से फर्जी एफ.आई.आर. लिखवायी गयी और इस तरह कानूनी औपचारिकताओं को पूरा कर लिया गया।

एस.पी. रणवीर शर्मा केन्द्रीय गृहमंत्री आई. डी. स्वामी के दामाद हैं। सो जाहिर है कि सरकार और न्यायपालिका भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पा रही है। हरियाणा, दिल्ली और देश भर के पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और जनतांत्रिक अधिकार कर्मियों के विरोध के बावजूद अब तक न तो सतीश कुमार की रिहाई हुई है और न ही एस.पी. व अन्य पुलिसकर्मियों के खिलाफ कोई कार्रवाई ही हुई है। सेशन कोर्ट ने तो पहले ही जमानत की अर्जी खारिज कर दी थी और हरियाणा हाईकोर्ट ने तो न केवल अर्जी खारिज की वरन सुनवाई की अगली तारीख चार महीने बाद मुकर्रर की। यह रणवीर शर्मा की सत्ता तंत्र पर ही नहीं वरन न्यायपालिका पर भी पहुंच को साफ तौर पर दिखाता है। यूं भी क्या यह महज एक इत्तेफाक है कि सेशन कोर्ट और हाईकोर्ट के जिन जजों ने जमानत की अर्जी खारिज की वे सगे भाई हैं।

लेकिन पिछले दिनों केन्द्रीय गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी द्वारा यह कहना कि आतंकवाद का मुकाबला करने में सुरक्षाकर्मियों द्वारा अगर अनजाने में मानवाधिकारों का उल्लंघन हो जाता है तो उन्हें राहत देने के लिए सरकार उचित क़ानून बनाएगी, एक खतरनाक संकेत है।

पाठकों को यह ब्यौरा पढ़कर प्रियदर्शनी भट्ट का केस भी जरूर याद आ रहा होगा। इस मामले में बलात्कारी को उच्च न्यायालय इसलिए सजा नहीं दे सका था क्योंकि वह भी एक बड़े पुलिस अफ़सर का बेटा था। मामले की एफ. आई.आर. इतनी होशियारी से लिखी गयी थी और गवाही-जिरह इस ढंग से हुई थी कि बेचारे जज को यहां तक कहना पड़ा था कि "मैं जानता हूं कि डी.आई.जी. का बेटा बलात्कारी है लेकिन उसे सजा दिलवाने के लिए सबूत काफी नहीं थे।"

पुलिस की इन कारस्तानियों के अनगिनत उदाहरण हैं जो बताते हैं कि आई.पी.सी.-सी. आर.पी.सी. के पन्नों को पुलिस चबाकर निगल जाती है, थूकती भी नहीं। पुलिस मैनुअल, सुप्रीम कोर्ट और मानवाधिकार आयोग की हिदायतों को पुलिस किस नजरिये से देखती है, इसे जानना हो तो जरा किसी थानेदार से इसकी चर्चा करके देखिये।

फिर भी पुलिस के उच्चाधिकारी, सुप्रीम कोर्ट और मानवाधिकार आयोग समय-समय पर जनता के साथ संवेदनशील व्यवहार करने और मानवाधिकारों की कद्र करने सम्बन्धी हिदायतें जारी करते रहते हैं। अगर हिदायतों से पुलिस का आचरण सुधरना होता तो इसके लिए पुलिस की आचार संहिता ही काफी थी जो संस्कृत नीतिशास्त्र के नीतिवचनों को भी मात देती है। कुछ नमूने देखिए। पुलिस आचार संहिता का सूत्र 10 कहता है: *"सौजन्यता हृदय से शिष्टता, विश्वसनीयता तथा नितान्त निष्पक्षता पुलिस जनों के विशेष आभूषण होंगे"।* और सूत्र-4 कहता है: *"कानून का पालन कराने अथवा व्यवस्था बनाये रखने के काम में, जहां तक बन पड़े, पुलिस को समझाने-बुझाने और सलाह देने का काम करना चाहिए"।* जब अपने जन्म के समय से ही चले आ रहे इन नीतिवचनों से पुलिस अब तक नहीं सुधरी तो नयी-नयी हिदायतें भला क्या असर डालेंगी। हम भी जानते हैं आप भी जानते हैं। पर 'जान के भी वो कुछ भी न जानें, हैं कितने अनजाने लोग!'

इसका कारण स्पष्ट है। पुलिस का एक आम सिपाही भी यह जानता है कि पुलिस के घोषित और अघोषित उद्देश्यों में कितना फर्क है। उसे समाज के आम लोगों की हिफाजत नहीं विशिष्ट जनों की हिफाजत करनी है। विशिष्ट जनों में भी जब जिस समूह की सत्तातंत्र पर जितनी पकड़ होती है उसकी हिफाजत उतनी मुस्तैदी से करनी होती है। साधारण जनों के कोप से विशिष्ट जनों के नन्दन-कानन को बचाना पुलिस का पुनीत कर्तव्य है – चाहे जैसे, लाठी-गोली, जेल-कोड़े-फांसी – हर मुमकिन तरीकों से। इस कर्तव्य को निभाने के बदले अगर कानून से इतर जाकर वह कुछ करती है, तो उस पर आंखें मूंद ली जाती हैं।

क़ानून से इतर कुछ भी करने पर एनकाउंटर करने पर, हिरासत में यातना देकर मार डालने पर, थर्ड डिग्री का इस्तेमाल करने पर, थानों में बलात्कार पर, जनतांत्रिक अधिकारों को बूटों के नीचे दबा देने पर – पहले ही पुलिस को अलिखित अभयदान मिला हुआ था। **लेकिन पिछले दिनों केन्द्रीय गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी द्वारा यह कहना कि आतंकवाद**

का मुकाबला करने में सुरक्षाकर्मियों द्वारा अगर अनजाने में मानवाधिकारों का उल्लंघन हो जाता है तो उन्हें राहत देने के लिए सरकार उचित क़ानून बनाएगी, एक खतरनाक संकेत है। यह बात उन्होंने पिछले पांच सितम्बर को विभिन्न राज्यों के पुलिस महानिदेशकों और महानिरीक्षकों के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा था। आडवाणी ने तो पंजाब में आतंकवाद को कुचलने के नाम पर पुलिस व सुरक्षाबलों द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाले पुलिसजनों पर चल रहे मुकदमों को उठा लेने व उन्हें आम माफी देने तक की बात कह डाली थी। लेकिन इस बयान पर हुई आलोचनाओं के बाद वह इससे मुकर गये कि उन्होंने ऐसी कोई बात कही थी।

आडवाणी के इस खुले अभयदान से पंजाब के भूतपूर्व पुलिस महानिदेशक के.पी.एस.गिल सरीखे लोगों को मनचाही मुराद मिल गयी। गिल उन पुलिस अधिकारियों में से हैं जो पुलिस, अर्द्धसैनिक बलों व सेना द्वारा आतंकवाद को कुचलने के नाम पर बर्बर अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाने वाले मानवाधिकार संगठनों को अक्सर खरी-खोटी सुनाते रहते हैं। वह अक्सर इस पर अफसोस जाहिर करते रहते हैं कि अपराधियों को सजा दिलाने के लिए नाहक लम्बी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। पुलिस को ही वे न्याय की कुर्सी पर बिठा देने की वकालत के जोश और कानून से हाथ बंधे होने की कसमसाहट में एक बार उन्होंने यहां तक कह डाला था कि *'इस नामर्द देश में पैदा क्यूं कर दिया।'* आडवाणी अगर 'अनजाने ही मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाले सुरक्षाकर्मियों को राहत दिलाने के लिए उचित कानून' बनवाने में सफल रहे तो के.पी.एस. गिल जैसों को अपनी मर्दानगी दिखाने का भरपूर अवसर मिल जायेगा।

जाहिर है कि इबलीस की औलादों को राज्यसत्ता का भरपूर संरक्षण हासिल है। ऐसे में भला वे अपनी शैतानी हरकतों से क्यूंकर बाज आयेंगे। आने वाले समय में ये हरकतें और बेकाबू होती जायेंगी अगर देश में एक मजबूत जनतांत्रिक अधिकार आन्दोलन नहीं संगठित होगा। जनप्रतिरोध के अलावा इबलीस की औलादों के कहर से बचने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं है।

बोलते आंकड़े चीखती सच्चाइयां

देश में बुनियादी आर्थिक "सुधार" कार्यक्रमों को लागू होते एक दशक पूरा हो गया। एक दश पूर्व जुलाई, 1991 में तत्कालीन नरसिंह राव-मनमोहन सिंह की कांग्रेसी सरकार ने आम बजट के साथ "उदारीकृत" आर्थिक नीतियों का पहला खेप परोसी थी। तब से लेकर अब तक चुनावी वामपंथियों से लेकर लगभग सभी किस्म के रंग-रोगन वाली पार्टियां सत्ता में भागीदारी कर चुकी हैं – चाहे संयुक्त मोर्चा रहा हो अथवा राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन। क्या है इन "सुधारों" की सच्चाई, देखते हैं कुछ आंकड़ो की जुबानी –

* भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 31 मार्च 1999 को प्रस्तुत सर्वे रिपोर्ट के अनुसार आर्थिक उदारीकरण लागू होने के बाद देश में 3,06,221 लघु उद्योग और 2,363 निजी मझोले और बड़े उद्योग बंद हो चुके थे। उदारीकरण के दस वर्ष पूरा होते-होते (यानी 2001 में) बंद छोटे-बड़े उद्योगों की संख्या लगभग चार लाख तक पहुंच चुकी है और चार करोड़ से ज्यादा लोगों की नौकरियां छीनी जा चुकी हैं। उदारीकरण के बाद बीमार उद्योगों की संख्या डेढ़ गुने से ऊपर पहुंच चुकी है।

* आर्थिक सर्वेक्षण 2001 के अनुसार 1997 के मुकाबले 2000-2001 तक एक लाख चौवालिस हजार सरकारी नौकरियों और पचास हजार निजी क्षेत्र की नौकरियों में कटौती की जा चुकी है। 1980 में वार्षिक रोजगार वृद्धि दो प्रतिशत थी जो 90 के दशक में महज 0.98 प्रतिशत रह गयी।

* विगत दस वर्षों के दौरान देश में बेरोजगारों की संख्या में दूने की वृद्धि हो चुकी है और इसमें वृद्धि लगातार जारी है। बेरोजगारों की एक बड़ी आबादी रोजगार कार्यालयों से नाउम्मीद हो चुकी है और वह वहां अपना पंजीकरण नहीं करवाती है। फिर भी जितने लोगों ने वहां पंजीकरण करवाया उनके मुकाबले मिलने वाले रोजगार का प्रतिशत भी गौरतलब है। 1989-90 से 1998-99 के बीच पंजीकरण करवाने वालों की संख्या में 22.56 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि रोजगार में महज 6.68 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। 1990 में रोजगार कार्यालयों में 3 करोड़ 28 लाख नये लोगों ने पंजीकरण करवाये जिनमें से 2 करोड़ 64 लाख लोगों को रोजगार मिला था जबकि 1999 में 4 करोड़ 2लाख नये पंजीकृत बेरोजगारों में से महज 2 करोड़ 81 लाख लोगों को नौकरियां मिल पायी थीं।

* 1995-96 से 1998-99 के बीच भविष्य निधि योजना से 60 लाख 84 हजार लोगों ने नाता तोड़ लिया है, जिसकी मूल वजह लोगों को नौकरियों से हाथ धोना है।

* 1990-91 में एक डालर का मूल्य 19 रुपये 64 पैसे था जो 1991-92 में दो बार किये गये रुपये के अवमूल्यन के बाद छलांग लगाकर 31 रुपये 23 पैसे के भाव पहुंच गया। वित्त मंत्रालय और भारतीय रिजर्व बैंक की लाख मशक्कतों और वित्तीय समायोजन के बावजूद इस वक्त (30 अप्रैल, 2001) एक डालर की कीमत 46 रुपये 86 पैसे है और किसी भी वक्त यह 50 रुपये से ऊपर पहुंच सकती है।

* 1991 से 2000 के बीच भारत पर विदेशी कर्ज का बोझ 1,63,0012 करोड़ रुपये से बढ़कर 4,29,271 करोड़ रुपये हो गया। आज यह 5 लाख करोड़ रुपये के करीब पहुंच रहा है। आज देश में पैदा होने वाला हर बच्चा दस हजार रुपये कर्ज का बोझ लेकर पैदा हो रहा है।

* विगत दस वर्षों के दौरान जहां नीचे की 70 फीसदी आबादी लगातार जिल्लत और बदहाली की ज़िन्दगी जीने के लिये अभिशप्त होती गयी है लगभग 40 फीसदी आबादी गरीबी रेखा के नीचे जी रही है वहीं बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था और काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था के कारण ऊपर की 20 फीसदी आबादी के सुख-समृद्धि और ऐशों आराम की ज़िन्दगी (यानी जीवन स्तर) छलांग लगाकर काफी ऊपर चली गयी है। उदारीकरण का लाभ इसी आबादी को मिला है। एक रिपोर्ट के अनुसार 1991 से 1999 के बीच बहुराष्ट्रीय कम्पनी डल-ब्रिटिश यूनीलीवर की भारतीय शाखा हिन्दुस्तान लीवर की आय 1800 करोड़ से बढ़कर 11,400 करोड़ हो गयी, जबकि इसी अवधि में देशी पूंजीपति रिलायंस उद्योग समूह का कारोबार 2,954 करोड़ रुपये से बढ़कर 21,562 करोड़ रुपये तक पहुंच गया।

भगतसिंह के जन्मदिवस (27 सितम्बर) के अवसर पर 'दिशा' द्वारा विविध कार्यक्रमों का आयोजन

सर्दियां तुम्हारी वसन्त हमारा

दिल्ली। भगतसिंह को याद करने के रस्मी कवायदों और छात्रों-नौजवानों के प्रतीक इस नाम के वास्तविक अर्थ को ढांपने व उनके विचारों पर पर्दा डालने की साजिशों के समान्तर **'दिशा छात्र संगठन'** को विभिन्न इकाइयों ने विविध कार्यक्रमों के माध्यम से शहीदे आज़म के अधूरे सपने को पूरा करने का संकल्प बांधा।

'दिशा छात्र संगठन' की **दिल्ली** इकाई ने इस अवसर पर **'शहीदे आज़म विचार-यात्रा'** का आयोजन किया। भगतसिंह के 95 वें जन्मदिवस पर 27 सितम्बर को सुबह 10 बजे **दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर** में पटेल चेस्ट चौराहे से लगभग पचास कार्यकर्ताओं की टोली ने साइकिल मार्च निकाला। यह विचार यात्रा विश्वविद्यालय परिसर के सभी कालेजों, संकायों तथा आसपास के रिहायशी इलाकों में छोटी-छोटी सभाएं करते हुए दिन में 2 बजे **रामजस कालेज** के पास क्रांति चौक पर समाप्त हुआ।

विभिन्न सभाओं के माध्यम से वक्ताओं ने कहा कि आज जब एक अधूरी, खण्डित आज़ादी के रूप में साम्राज्यवाद से सांठगांठ किये हुए देशी पूंजीवाद के जालिम शासन के जुअे को ढोते-ढोते आधी सदी से ज्यादा का समय बीत चुका है, आज जबकि 'इस' आज़ादी का वास्तविक रूप भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों के दौर में खुलकर सामने आ चुका है, तो इस अंधेरे के खिलाफ निर्णायक संघर्ष के लिए 'उस' आज़ादी को याद करना बेहद ज़रूरी है जिसका भगतसिंह ने न सिर्फ सपना देखा था बल्कि उसका एक नक्शा भी सामने रखा था और उसे हासिल करने के रास्ते की भी एक रूपरेखा प्रस्तुत की थी।

'दिशा' के कार्यकर्ता भगतसिंह के चित्र लगी हुई टोपियां पहने थे तथा साइकिलों पर नौजवानों को ललकारने वाले नारों की तख्तियां लगी थीं। वे **'भगतसिंह को याद करो! नई क्रान्ति की राह चलो!'**, **'भगतसिंह का आह्वान, जागो-जागो नौजवान'**, **'नौजवान जब भी जागा, इतिहास ने करवट बदली है'**, **'भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा, छात्र और नौजवान उसे करेंगे पूरा'**, **'भगतसिंह को याद करेंगे, जुल्म नहीं बर्दाश्त करेंगे'** आदि नारे लगा रहे थे। इस अवसर पर छात्रों-नौजवानों का आह्वान करते हुए एक पर्चा भी वितरित किया गया।

विचार यात्रा में **सोनीपत** से साइकिल पर आयी छात्रों की टोली भी शामिल हुई। इस साइकिल मार्च का नेतृत्व **अभिनव, प्रदीप, चारुचंद, अरविन्द, प्रवीण, पंकज भारद्वाज, संगीता, अमित, कपिल, पंकज कुमार, परिमल, कश्मीर** आदि ने किया।

सोनीपत में जन्मदिवस की पूर्व संध्या पर 26 सितम्बर को **'दिशा छात्र संगठन'** की टोली ने शहर के विभिन्न बाज़ारों तथा औद्योगिक क्षेत्रों में साइकिल जुलूस निकाला और सभाएं कीं।

विभिन्न सभाओं के माध्यम से वक्ताओं ने कहा कि भगतसिंह और उनके साथियों ने अपने लेखों, पर्चों और बयानों में बार-बार यह बताया था कि कांग्रेस के नेतृत्व में जो लड़ाई लड़ी जा रही है उसका लक्ष्य व्यापक जनता की शक्ति का इस्तेमाल करके देशी पूंजीपतियों के लिए सत्ता हासिल करना है, गोरी बुराई की जगह काली बुराई लाना है। उनकी चेतावनी अक्षरश: सही साबित हुई। सन '47 में देशी हुकूमत ने विकास का जो पूंजीवादी रास्ता चुना उसने जनता को दुख-तकलीफ, तबाही-कंगाली के अथाह सागर में धकेल दिया जिसमें जगह-जगह मुट्ठी भर लोगों की अय्याशी के टापू खड़े किये गये। इस विनाशकारी रास्ते पर 54 वर्षों की यात्रा ने आज देश को चौतरफा लूट-खसोट, घिनौने भ्रष्टाचार, बर्बर भ्रातृघाती, साम्प्रदायिक-जातीय कलह और हताशा के दलदल में धंसा दिया है।

इस साइकिल रैली का नेतृत्व **पंकज कुमार, परिमल, कश्मीर** आदि ने किया।

लखनऊ। **'दिशा छात्र संगठन'** की स्थानीय इकाई ने लखनऊ विश्वविद्यालय के कला संकाय में भगतसिंह के विचारों की एक पोस्टर प्रदर्शनी व पुस्तक प्रदर्शनी लगाकर एक अनूठा व प्रेरक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

शहीदे आज़म भगतसिंह के जन्मदिवस पर आयोजित इस प्रदर्शनी में आम छात्र-छात्राओं की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए **'छात्र-स्वर'** नाम से एक पट्टिका लगायी गयी थी। लोगों के विचार आमन्त्रित करने के लिए लगाये गये इस पट्टिका में आम छात्रों से तीन सवाल पूछे गये थे – आगामी छात्र संघ चुनाव और छात्र राजनीति की पतनशीलता के बारे में, समूह 'ग' द्वारा रोज़गार के सपने दिखाने के खोखलेपन के प्रति तथा दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिका द्वारा इंसाफ का फैसला सुनाने के बारे में।

एकदम नये और इस रोचक आयोजन में आम छात्र-छात्राओं ने उत्साह से भाग लिया। तमाम छात्रों ने अपनी-अपनी बेबाक प्रतिक्रिया पट्टिका पर दर्ज की। कुछ छात्रों के जवाब थे – **'पहले चुनाव की करो तैयारी, फिर बाद में करो ठेकेदारी'**; **'समूह ग: एक को रोजगार, निन्यानबे हैं बेरोजगार'**; **'वाह रे सरकार, हमारी सरकार'**; **'अमेरिका की आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई से लाभ क्या! खून की नदियां, ईर्ष्या, वैमनस्य और अंत एक सन्नाटा'**। इस खुले आयोजन में शिक्षकों से भी सहयोग मिला। हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्ष **इन्द्रप्रभा पराशर** ने **'दिशा'** के कार्यकर्ताओं का उत्साहवर्धन करते हुए कहा कि आज के विपरीत समय में भगतसिंह को याद करना बेहद ज़रूरी है।

इस आयोजन में **'दिशा'** के कार्यकर्ताओं ने एक विशेष ऐप्रन भी पहन रखा था, जिन पर **'खत्म करो पूंजी का राज, लड़ो बनाओ लोक स्वराज!'**, **'भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चुनो'** आदि नारे लिखे थे। इस आयोजन का नेतृत्व **राकेश कुमार, देवेन्द्र प्रताप, आशीष, सुमित, अरविन्द** आदि ने किया।

गोरखपुर। **'दिशा छात्र संगठन** का नारा, **सर्दियां तुम्हारी वसंत हमारा**, नारे की अनुगूंज के साथ गोरखपुर में भगतसिंह का जन्मदिवस

चार दिवसीय जनजागरण अभियान के रूप में मनाया गया।

24 से 27 सितम्बर तक चले इस अभियान के तहत **'दिशा'** की टोली ने विभिन्न नारों से युक्त ऐप्रन पहने और तख्तियां लगाए हुए साइकिल रैलियां निकाली और शहर के विभिन्न कार्यालयों में नुक्कड़ नाटक **'हवाई गोले'** की प्रस्तुति की। नाटक के माध्यम से संसदीय सुअरबाड़े की असलियत का खुलासा किया गया।

27 सितम्बर को सुबह प्रेमचन्द पार्क से एक साइकिल रैली निकाली गयी जो भगतसिंह चौक पर पहुंचकर शहीदे आज़म की मूर्ति पर माल्यार्पण के बाद एक नुक्कड़ सभा में तब्दील हो गयी। सभा में वक्ताओं ने कहा कि जब सारे देश में आम आदमी के हालात लगातार बद से बदतर होते जा रहे हों, 30 करोड़ बेरोजगार सड़कों की खाक छान रहे हों, नौकरी मिलना तो दूर मिली हुई नौकरियां ही छीनी जा रही हों, शिक्षा से लेकर चिकित्सा तक सब कुछ बिकाऊ माल बनाया जा रहा हो तो ऐसे समय में बेहतर शिक्षा और बेहतर भविष्य के लिए छात्रों की लड़ाई कैम्पसों के भीतर सिमटी नहीं रह सकती। छात्र-नौजवान आबादी को समाज के व्यापक और बुनियादी सवालों से जूझना होगा। शाम को **'दिशा'** के कार्यकर्ताओं ने मशाल जुलूस भी निकाला। जो भगतसिंह चौक से गोलघर होते हुए टाउनहाल पर जाकर समाप्त हुआ। इसके बाद क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति भी की गयी। इस कार्यक्रम में **अरुण मौर्य, अरुण यादव, जनार्दन, शालिनी, समृद्धि, समीक्षा, विक्रम जायसवाल, आदेश** आदि ने भागीदारी की।

सूरजपुर (मऊ) 'नौजवान भारत सभा' की स्थानीय इकाई ने भगतसिंह के जन्मदिवस के अवसर पर 29 सितम्बर को सूरजपुर में शहीद पुस्तकालय के सामने एक सभा का आयोजन किया।

सभा के दौरान वक्ताओं ने कहा कि पिछले चौवन वर्षों के आज़ाद भारत में जहां देशी पूंजीपतियों की पूंजी में पांच सौ गुने से हजार गुने तक की बढ़ोत्तरी हुई है वहीं मेहनतकश बहुसंख्यक आम आबादी की बदहाली लगातार बढ़ती गयी है। विगत एक दशक के दौरान, जबसे उदारीकृत नयी अर्थव्यवस्था लागू हुई है, यह लूटतंत्र और ज्यादा बढ़ता गया है। हालात ये है कि विगत एक दशक के दौरान लगभग चार लाख छोटे-बड़े कारखाने बन्द हो चुके हैं और लगभग पांच करोड़ लोग सड़कों पर ढकेले जा चुके हैं।

शिक्षा-चिकित्सा जैसी मिली बुनियादी सहूलियतें भी अब छीनी जा रही हैं। गरीबी और तंगहाली से पूरे परिवार सहित आत्महत्याएं बढ़ती जा रही हैं। एक तरफ अनाज का विपुल भण्डार पड़ा है और सड़ रहा है दूसरी तरफ देश के कई हिस्सों में लोग भूख से मर रहे हैं, कुपोषण के शिकार हो रहे हैं। भगतसिंह ने ऐसे ही समाज के बारे में कहा था **'अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी सुविधाओं से वंचित रखती है तो उस देश के छात्रों-नौजवानों का यह दायित्व ही नहीं, आवश्यक कर्तव्य बन जाता है कि वे उस सरकार को पलट दें या फिर तबाह कर दें।'** वक्ताओं ने नौजवानों को आह्वान किया कि वे भगतसिंह के सपनों का समाज बनाने के लिए आगे आयें। यही आज वक्त की जरूरत है और यही शहीदे आज़म को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

सभा को, **आदेश कुमार, कपिलदेव, के. एन.सिंह, नन्दलाल, भरत शर्मा, पारसनाथ सिंह, डा. अमरनाथ, अनुभवदास शास्त्री** आदि ने सम्बोधित किया। संचालन **दसवंत** ने किया।

सभा के प्रारम्भ में भगतसिंह के चित्र पर माल्यार्पण किया गया। अन्त में **देहाती मज़दूर किसान यूनियन** व **नारी** सभा की संयुक्त टोली ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इस अवसर पर पुस्तक एवं पोस्टर प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी।

साहसिक विद्रोह है!

(पृष्ठ 26 का शेष)

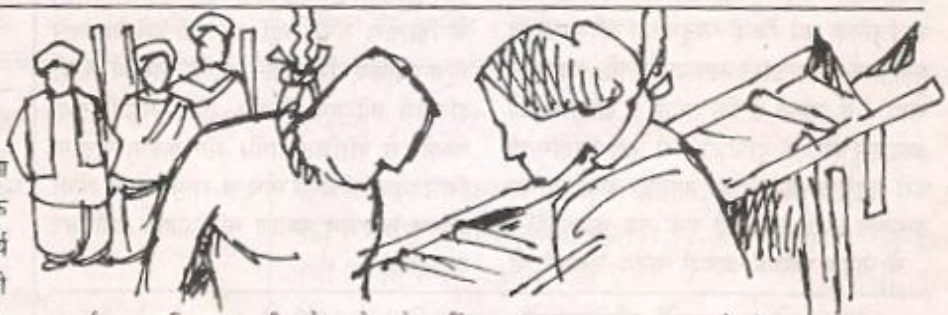

लिए युवाओं का संघर्ष वस्तुत: जाति-व्यवस्था और धार्मिक कट्टरपंथ के विरुद्ध भी एक संघर्ष है और यह एक अनिवार्य-अपरिहार्य संघर्ष है। प्रेम करने की आज़ादी जीने की आज़ादी है। यह जनवाद की वह पुरानी, बुनियादी लड़ाई है, जो अभी तक हमारे देश में जीती नहीं जा सकी है। भारतीय समाजवादी क्रान्ति के एजेण्डे पर जातिवाद-विरोध, धर्म के मामले में व्यक्तिगत आज़ादी और प्रेम के मामले में जाति-धर्म के बंधनों के विरोध का सवाल अहम स्थान रखता है। यह एक शौर्यपूर्ण और जुझारू सांस्कृतिक आन्दोलन का एजेण्डा है। इस एजेण्डे को हाथ में लिये बिना जनमुक्ति का प्रबल वेगवाही झंझावत नहीं खड़ा किया जा सकता। जाति-धर्म के बंधन के सम्पूर्ण, नाश की लड़ाई एक लम्बी लड़ाई है, जो राजनीतिक क्रान्ति सम्पन्न होने के बाद भी दीर्घकाल तक सतत् जारी रहेगी। लेकिन इस लड़ाई का यदि आज ही जोर-शोर से नहीं छेड़ा जायेगा तो सामाजिक-राजनीतिक क्रान्ति की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया ही नहीं जा सकेगा।

*

दमन की हर चेष्टा प्रतिरोध की लपटों को हवा देकर लहकाने-दहकाने का ही काम करती है। सैकड़ों विशालों और सोनुओं को फांसी चढ़ाकर भी युवाओं के दिलों से प्रेम करने की पवित्र मानवीय चाहत का खात्मा नहीं किया जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे, अन्याय के विरुद्ध विद्रोह के जज्बे को नहीं दबाया जा सकता।

भारतीय समाज के अंधेरे में प्रेम करना यदि गुनाह माना जाता है तो इसके मानी यह है कि प्रेम एक साहसिक विद्रोह है। फांसी और गोली से प्रेम करना बंद नहीं किया जा सकता। बहादुर युवा फिर भी प्रेम करेंगे। जाति और धर्म के बंधनों को लात मारकर प्रेम करेंगे। यदि वे इंसाफपसन्द और स्वाभिमानी हैं, यदि वे सच्चे अर्थों में युवा हैं तो प्रेम करने के अधिकार के लिए वे जाति-धरम के ठेकेदार "पंच परमेश्वरों" की सामुदायिक बर्बरता को अवश्य ही चुनौती देंगे। प्रेम करने के लिए की गई हर बगावत जाति प्रथा और धार्मिक कट्टरता पर चोट करेगी और सामाजिक मुक्ति के लिए जनमानस को तैयार करने का काम करेगी।

इतिहास से भयाक्रान्त...

(पृष्ठ 11 का शेष)

उनके स्थान पर अर्जुन देव थे। वह कहते हैं कि कुत्वत उल इस्लाम के सामने एक सूचना पट्ट पर वह तथ्य लिखा हुआ है जिसे दीक्षित महोदय राष्ट्र को बताना चाहते हैं, उसे किताब में लिखने की आवश्यकता नहीं है। अर्जुन देव ने चिंता व्यक्त की है और कहा है कि इतिहास को साम्प्रदायिकता और मिथकों के अधीन करने का षडयंत्र किया जा रहा है।

जिन पुस्तकों को हटाए जाने का प्रस्ताव है वे हैं **विपन चंद्रा** के *आधुनिक भारत*, **रोमिला थापर** की प्राचीन और मध्य भारत पर पाठ्य पुस्तकें और सतीश चंद्रा की *मध्य भारत*। **रोमिला थापर** कहती हैं: "अगर आप पुस्तकों में संशोधन करना चाहते हैं तो सक्षम इतिहासकारों को ऐसा करने दें। क्या उन्होंने कोई कमेटी बनाई है और क्या उस कमेटी ने इन पाठ्य पुस्तकों के वापस लिए जाने को मान्यता दी है? हम जानना चाहते हैं कि वे विशेषज्ञ कौन हैं और किस आधार पर उन्होंने इन पुस्तकों से पीछा छुड़ाने का निर्णय लिया है। यह कहना कि कोई वैचारिक प्रेरणा नहीं, सही नहीं होगा।" उन्होंने मांग की कि एन.सी. ई.आर.टी. उन एक्सपर्टों की लिस्ट को सार्वजनिक करे जिन्हें पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनाने के लिए उसने लगाया है। **प्रो. थापर** ने कहा, "वे जानते हैं कि अगर वे इतिहास को आर.एस.एस. के दृष्टिकोण से नहीं लिखेंगे तो उसे खारिज कर दिया जाएगा। इतिहास का उन्मूलन करने के पीछे एक यह वजह है। .. ये पाठ्य पुस्तकें आदर्श पाठ्य-पुस्तकें थीं और समझ यह थी कि यदि राज्य को उनमें कोई बदलाव करना था तो लेखकों के नाम हटा दिए जाएंगे। ... " हम मार्क्सवादी साहित्य नहीं लिख रहे थे। हम सामाजिक और आर्थिक इतिहास के कुछ विचारों को प्रतिबिम्बित करने की कोशिश कर रहे थे। लक्ष्य था स्तरीय सूचना देना।"

मध्य भारत के प्रतिष्ठित इतिहासकार **प्रो सतीश चंद्रा** आश्चर्य प्रकट करते हैं: "इतिहास तथ्यों के आधार पर लिखा जाना चाहिए या समुदायों की अति भावुकता को ध्यान में रखकर।"

अर्जुन देव ने बताया है कि प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह, भू शास्त्री एजाजुद्दीन अहमद, जिन्होंने बारहवीं की भूगोल की पुस्तक लिखी है, समेत रोमिला थापर, डी.एन.झा, के.एम.श्रीमाली, सतीश चंद्रा जैसे विश्व प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित इतिहासकारों को इस विषय से सम्बद्ध विशेषज्ञों की टीम से हटा दिया गया है।

जो कुछ होने जा रहा है उसकी भयंकरता का एहसास शायद अभी हमें ठीक से नहीं हो पा रहा है। अगर सभी इंसाफपसंद, संजीदा, तर्कपरक और साम्प्रदायिकता-विरोधी छात्र और शिक्षक एकजुट होकर इस भगवा साजिश के खिलाफ संघर्ष नहीं करेंगे तो हमें यह जान लेना चाहिए कि आने वाली सम्पूर्ण पीढ़ी इतिहास की एक विकृत, तोड़ी-मरोड़ी गयी तस्वीर से परिचित होगी। और कहना न होगा कि विकृत इतिहास बोध से सम्पन्न नयी पीढ़ी स्वस्थ मानवीय समाज की वाहक नहीं बन सकती।

...तबाह होता छात्रों-नौजवानों का भविष्य

(पृष्ठ 15 का शेष)

की दिशा में उठती हुई दिख रही, वही शासकों और उनकी व्यवस्था के लिए मरणान्तक होने जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं होना चाहिए। इतिहास का सबक यही है।

जिन करोड़ों नौजवानों के सपने बदरंग हो रहे हैं, आकांक्षाएं धूल-धूसरित हो रही हैं, वे बहुत दिनों तक चुपचाप नहीं बैठेंगे। उनके भीतर सुलग रहा आक्रोश का लावा मुहाने तलाश रहा है और उन्हें वह मुहाना भी देर-सवेर मिल ही जायेगा। क्योंकि यह भी इतिहास का सबक है कि ऐसे ही दौरों में मेहनतकश अवाम के वे बहादुर बेटे-बेटियां आगे आ जाते हैं जो सबसे अधिक संवेदनशील होते हैं, बगावत का जज्बा जिनके अन्दर हिलोरें ले रहा होता है। सबसे पहले ये नौजवान भगतसिंह का यह आह्वान सुनेंगे, फिर समूची युवा आबादी को यह साफ-साफ सुनायी देगी: **"अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित रखती है तो उस देश के नौजवानों का यह अधिकार ही नहीं कर्तव्य बन जाता है कि ऐसी सरकार को उखाड़ फेंके या तबाह कर दें।"**

अमेरिकी सत्ताधारियों के हाथ...

(पृष्ठ 9 का शेष)

आतंकवाद को कुचलने के नाम पर जालिम राज्यसत्ताएं सिर्फ यही कर सकती हैं कि व्यापक आबादी को दमन का निशाना बनायें और ऐसा करते हुए वे जनक्रांति को आमंत्रण देने का काम करती हैं।

आतंकवाद विश्व इतिहास की महज एक संक्रमणकालीन परिघटना है। हाल की घटनाओं का एक निहितार्थ यह भी है कि इसी संक्रमण के दौरान भविष्य के रास्ते का नक्शा बनेगा और वित्तीय पूंजी के विनाशकारी विश्व वर्चस्व के विरुद्ध नयी जनक्रान्तियों की रूपरेखा तय होगी। तब तक, जिन आततायी सत्ताओं ने अतीत की जनक्रान्तियों को खून की नदी में

प्रायः जनक्रान्तियां जब पराजित होती हैं, जब गतिरोध और उलटाव के दौर आते हैं, तो जनता में व्याप्त गहरी निराशा की जमीन से, मध्य वर्ग के बीच से ऐसी ताकतें पैदा होती है। इतिहास के रंगमंच पर जब जनक्रान्तियों के वास्तविक नायक नहीं होते तो उन लोगों को भी उत्पीड़ित जनता अपना नायक मान लेती है जो आत्मघाती हदों तक बहादुराना कारनामों द्वारा अन्यायी सत्ता को चुनौती देते हैं।

डुबो दिया और जनता के स्वप्नों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों को राख की मोटी परत के नीचे दबा दिया, उन्हें आतंकवादी कहर का कोप भुगतना ही होगा। यह उन्हीं का पाप है। उन्हें ही भुगतना है।

यह त्रासद है कि अमेरिकी शासक वर्ग के साथ ही अमेरिकी जनता को भी काफी विनाश झेलना पड़ रहा है। ऐसा उसने इतिहास में कभी नहीं झेला था। पर्ल हार्बर का विनाश भी इससे छोटा था और वह किसी आतंकवादी ग्रुप ने नहीं, बल्कि एक अन्य साम्राज्यवादी शक्ति ने किया था। लेकिन गौरतलब बात यह है कि इस बार के विनाश के बाद अमेरिका के भीतर भी जनमत अमेरिकी नीतियों को इसके लिए जिम्मेदार मान रहा है और अंधराष्ट्रभक्ति की भावनाओं में बहने के बजाय उन नीतियों को बदलने की मांग करता दीख रहा है। इस रुझान में भविष्य के कुछ महत्वपूर्ण संकेत छिपे हैं।

18 सितम्बर 2001

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता बेहतर किताबों से होकर जाता है!

परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकें

मां
मक्सिम गोर्की का अमर उपन्यास
पृष्ठ 448 • 70 रुपये

शहीदेआजम की जेल नोटबुक
एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य • भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज • भगतसिंह की शहादत के 68 वर्ष बाद हिन्दी में पहली बार प्रकाशित ❑ पृष्ठ 200 • 50 रुपये

विचारों की सान पर
भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए दस्तावेज, पत्र और वक्तव्य ❑ पृष्ठ 104 • 20 रुपये

माओ त्से-तुङ की कविताएं
राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियों के साथ
अनुवाद एवं सम्पादन : *सत्यव्रत* ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

चिरस्मरणीय
कय्यूर के किसान आन्दोलन के शहीदों पर लिखा **निरंजन** का प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास, अनुवाद : *रामकृष्ण पाण्डेय* ❑ पृष्ठ 168 • 35 रुपये

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट : इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां
मूल जर्मन से अनुवाद : *मोहन थपलियाल* ❑ पृष्ठ 148 • 60 रुपये

लहू है कि तब भी गाता है
(**पाश** के सभी संग्रहों से चयनित प्रतिनिधि कविताओं का संकलन)
संपादक : *चमनलाल एवं कात्यायनी* ❑ पृष्ठ 176 • 75 रुपये

चुनी हुई कहानियां : मक्सिम गोर्की (पहला खण्ड)
पृष्ठ 168 • 35 रुपये

पांच कहानियां : पुश्किन ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

दो अमर कहानियां : लू शुन ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

श्रेष्ठ कहानियां : प्रेमचंद ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

तीन कहानियां : गोगोल ❑ पृष्ठ 144 • 30 रुपये

दुर्ग द्वार पर दस्तक
कात्यायनी ❑ पृष्ठ 152 • 50 रुपये (द्वितीय संशोधित संस्करण)

माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य
रेमण्ड लोट्रा के दो महत्वपूर्ण लम्बे लेखों का संकलन
पृष्ठ 104 • 25 रुपये

समर तो शेष है...
इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का अनन्य संकलन ❑ पृष्ठ 144 • 35 रु. रुपये

क्रान्ति का विज्ञान
लेनी बुल्क ❑ पृष्ठ 36 • 10 रुपये

अब इंसाफ होने वाला है
उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का प्रतिनिधि संकलन
संपादक : *शकील सिद्दीकी* ❑ पृष्ठ 248 • 75 रुपये

मध्यवर्ग का शोकगीत
हान्स माग्नुस एंत्सेंसबर्गर की कविताएं
सम्पादन एवं अनुवाद : *सुरेश सलिल* ❑ पृष्ठ 72 • 25 रुपये

राहुल फाउण्डेशन के प्रकाशन

माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण	35 रुपये
Quotations from Mao Tse-Tung	40 रुपये
पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन —*लेनिन*	15 रुपये
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद —*वी. अदोरात्स्की*	15 रुपये
राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक आफ पोलिटिकल इकॉनमी) प्रत्येक खण्ड	: 60 रुपये
कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र —*कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स*	10 रुपये
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में —*चाउ चुन-चियाओ*	3 रुपये
मई दिवस का इतिहास —*अलेक्जेण्डर ट्रैक्टनबर्ग*	3 रुपये
अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन —*एल्बर्ट रीस विलियम्स*	75 रुपये

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं —*दीपायन बोस*	10 रुपये
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति —*शशिप्रकाश*	12 रुपये
क्यों माओवाद —*शशिप्रकाश*	10 रुपये

विगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा —*वी.आई. लेनिन*	5 रुपये
मकड़ा और मक्खी —*विल्हेल्म लीब्कनेख्त*	2 रुपये
ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके —*सर्जी रोस्तोवस्की*	2 रुपये

राहुल फाउण्डेशन एवं परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक :

अनचेतना
डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 ✆ (0522) 788932
(व्यक्तिगत प्रतियों के लिए 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें)

खत्म करो पूंजी का राज!
लड़ो, बनाओ लोक स्वराज!

गांव-गांव में अलख जगाकर
विदेशी लूट मिटाएंगे
देशी कफनखसोटों को भी
लड़कर मार भगाएंगे
कसम शहीदों की भारत में
लोक स्वराज बनाएंगे

''...हम मानते हैं कि नये सिरे से सब कुछ शुरू करना होगा। मेहनतकश जनता के राज्य और समतामूलक समाज के निर्माण की परियोजनाओं को पुनर्जीवित करना होगा। पूरी दुनिया के पैमाने पर, पिछली सदी के आखिरी चौथाई हिस्से के दौरान मेहनतकशों के इंकलाबों का कारवां रुक-सा गया है और भटका और बिखरा भी है। पूंजीवादी लूट और हुकूमत के तौर-तरीकों में भी अहम बदलाव आये हैं। उन्हें समझना होगा और नई क्रान्तियों की राह निकालनी होगी। यह कठिन है पर असम्भव नहीं। हर नया काम कठिन लगता है। हर नई शुरुआत मजबूत संकल्पों की मांग करती है। इतिहास के हजारों वर्षों के सफर का यह सबक है और पूंजीवादी लूटतंत्र के असाध्य संकटों और लाइलाज बीमारियों को देखते हुए यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि पराजय झेलने के बाद क्रान्तियां फिर से परवान चढ़ेंगी। यह सदी नई, फैसलाकुन क्रान्तियों की सदी होगी।

यह हमारा दृढ़ विश्वास है और इस विश्वास के पर्याप्त कारण हैं कि भारत की मेहनतकश जनता भी इस नये विश्व-ऐतिहासिक महासमर में पीछे नहीं रहेगी, बल्कि अगली कतारों में रहेगी। 85 फीसदी लोगों के दुखों और बर्बादियों के सागर में 15 फीसदी लोगों के समृद्धि के टापू और उन पर खड़ी विलासिता की मीनारें हमेशा के लिए कायम नहीं रह सकती। यह तूफान के पहले का सन्नाटा है। इसीलिए हुक्मरान बेचैन हैं। तरह-तरह के नये-नये काले कानून बनाकर, पुलिस-फौज को चाक-चौबन्द करके वे निश्चिन्त होना चाहते हैं, पर हो नहीं पाते। उन्हें लगने लगा है कि आम जनता को बांटने-बरगलाने के लिए उछाले जाने वाले मुद्दे और छोड़े जाने वाले शिगूफे भी बहुत दिनों तक काम नहीं आयेंगे। पूंजीवादी जनतंत्र की कलई चारों ओर से उतर रही है। नया रंग-रोगन टिकता नहीं। इसलिए भारत की पूंजीवादी राज्यसत्ता फासिस्ट निरंकुशशाही की ओर खिसकती जा रही है।

इसलिए, 'क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान' के जरिए हम इतिहास को गढ़ने वाले और अपने बलिष्ठ हाथों से समय के प्रवाह को मोड़ देने वाले मेहतनकश अवाम के पराक्रम को ललकार रहे हैं और एक नई, कठिन और निर्णायक लड़ाई की तैयारी में शामिल होने के लिए उन तमाम लोगों को निमंत्रण दे रहे हैं, जिनकी आत्माएं युवा हैं, जो सच्चे अर्थों में जिन्दा हैं।''

दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता, देहाती मज़दूर-किसान यूनियन, नारी सभा, दायित्वबोध मंच और नौजवान भारत सभा की ओर से पिछले छह वर्षों से चलाये जा रहे क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान के पर्चा संख्या-4 के अंश

प्रमुख सम्पर्क: ❑ बिगुल, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ❑'आह्वान' कार्यालय, संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर ❑विजयकुमार, 55/3, ई. डब्ल्यू.एस., आवास विकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर ❑कृष्णगोविन्द सिंह, S H -1/49,A-24 (प्रथम तल) जयनगर कालोनी गिलट बाजार वाराणसी - 221002, ❑सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-91